गल्पगुच्छ

पहला भाग

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

'विशाल-भारत' पुस्तकालय

१२०।२, अपर सर्कूलर रोड, कलकत्ता

मुद्रक और प्रकाशक
सजनीकान्त दास, 'प्रवासी'-प्रेस
१२०।२, अपर सरकूलर रोड
कलकत्ता

पहला संस्करण
पौष, १९८६.
मूल्य १।)
सजिल्द १॥)

सूचीपत्र

सूचना

कविवर श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी, शुरूसे आज तककी, सम्पूर्ण कहानियोंका संग्रह "गल्पगुच्छ" के नामसे कई भागोंमें क्रमशः प्रकाशित होगा। पहला भाग आपके सामने है। दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवाँ और छठा भाग क्रमशः प्रकाशित किये जायँगे।

*

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरने अपने सम्पूर्ण ग्रन्थोंका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करनेका अधिकार केवल "विशाल-भारत"को ही दिया है। इसलिए उनकी और-और पुस्तकें भी यहींसे प्रकाशित होंगी। रवि बाबूका नया उपन्यास "कुमुदिनी" शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

—प्रकाशक

गल्पगुच्छ

पहला भाग

घाटकी बात

पाषाण पर यदि वे घटनाएँ अङ्कित होतीं, तो तुम कितने ही दिनोंकी कितनी ही बातें मेरी प्रत्येक सीढ़ीपर पढ़ सकते। पुरानी बातें अगर सुनना चाहते हो, तो इन सीढ़ियोंपर बैठो ; मन लगाकर जलकी तरंगोंकी ओर कान लगाये रहो, बहुत दिनोंकी कितनी ही भूली हुई बातें सुन पड़ेंगी।

मुझे और एक दिनकी बात याद आ रही है। वह भी ठीक ऐसा ही दिन था। आश्विन मासके आनेमें दो-ही-चार दिन बाक़ी हैं। सवेरेके वक़्त, बहुत धीमी नवीन शीतऋतुकी पवन, सोकर उठे हुएकी देहमें नया जीवन ला रही है। पेड़ोंके पत्तोंको ज़रा-ज़रा फुरफुरी-सी आ रही है।

गङ्गाजी भरी हुई हैं। मेरी सिर्फ चार ही सीढ़ियां पानीके ऊपर जाग रही हैं। जलके साथ स्थलकी गलबहिंयां हो रही हैं, किनारेपर आमके बाग़के नीचे जहाँ अरवीका जङ्गल जम गया है, वहां तक गङ्गाका पानी पहुंचा है। नदीके उस घुमावके पास तीन पुराने पजाये पानीके भीतर उभरे हुए हैं। धीवरोंकी जो नावें किनारेपर बबूलके पेड़ोंसे बंधी थीं, वे सवेरेकी ज्वारके पानीपर तैरती हुई डगमग-डगमग कर रही हैं—दुरन्त-यौवन ज्वारका पानी इतरा-इतराकर उनके दोनों तरफ छप-छप आघात कर रहा है, मधुर परिहाससे मानो उनके कान पकड़कर हिला-हिला जाता है।

भरी गङ्गाके ऊपर शरत्-प्रभातकी जो धूप पड़ी है, उसका रंग है कच्चे सोने जैसा, चम्पा-फूलके समान। धूपका ऐसा रंग, और किसी भी समय नहीं दिखाई देता। बीचकी रेतीपर उगी हुई लम्बी-लम्बी कांसपर धूप पड़ रही है। अभी तक काशके फूल सब खिले नहीं हैं, खिलने शुरू ही हुए हैं।

राम-राम कहते हुए मल्लाहोंने नावें खोल दीं। चिड़ियाँ जैसे उजेलेमें पर फैलाकर आनन्दसे नील आकाशमें उड़ रही हैं, छोटी-छोटी नावें भी वैसे ही छोटे-छोटे पाल चढ़ाकर सूर्यकी किरणोंमें निकल पड़ीं। वे चिड़ियों जैसी ही मालूम देती हैं,—राजहंसोंकी तरह पानीमें तैर रही हैं, परन्तु आनन्दमें आकर दोनों पंख आकाशमें फैला दिये हैं।

भट्टाचार्यजी ठीक नियमित समयपर पंचपात्र हाथमें लिये स्नान करने आये। स्त्रियां भी एक-एक दो-दो करके पानी भरने आईं।

यह बहुत ज़्यादा दिनोंकी बात नहीं है। हां, तुम लोगोंको बहुत

दिनोंकी प्रतीत हो सकती है; पर मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह कलकी बात है। मेरे दिन तो गङ्गाके स्रोतके साथ खेलते-खेलते बह जाते हैं, बहुत दिनोंसे स्थिर होकर ऐसा ही देख रहा हूँ—इसीलिये समय मुझे बहुत दीर्घ नहीं मालूम देता। मेरे दिनका प्रकाश और रातकी छाया प्रतिदिन गङ्गापर पड़ती है और प्रतिदिन उस पर से पुछ जाती है, कहीं भी उनकी छबि नहीं दिखाई देती। इसीलिये, यद्यपि मैं देखनेमें वृद्ध जैसा लगता हूँ, पर हृदय मेरा हमेशा नवीन है। बरसोंकी पुरानी स्मृतिरूप काईके भारसे आच्छन्न होकर मेरी सूर्य-किरणें मारी नहीं गई हैं। दैवात् एकआध काईका टुकड़ा बहकर आता और देहसे लगकर फिर स्रोतमें बह जाता है। पर इससे, यह काई कुछ नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जहां गङ्गाका स्रोत नहीं पहुंचता, वहाँ मेरे छिद्र-छिद्रमें जो लता-गुल्म शैवाल उत्पन्न हुए हैं, वे ही मेरे पुराने साक्षी हैं, उन्हींने पुराने कालको स्नेहपाशमें बांधकर उसे चिर दिन श्यामल मधुर—चिर दिन नवीन—बना रक्खा है। गङ्गा प्रतिदिन मेरे पाससे एक-एक सीढ़ी उतरती जा रही हैं, और मैं भी एक-एक सीढ़ी करके पुराना हो रहा हूँ।

चक्रवर्ती-घरानेके वह जो वृद्ध पुरुष स्नान करके रामनामी ओढ़े कांपते हुए माला जपते-जपते घरको लौट रहे हैं, उनकी नानी तब इतनीसी थीं। मुझे याद है, उसका एक खेल था, वह प्रतिदिन घीकुवाँरका एक पत्ता गङ्गामें बहा जाती थी। मेरी दक्षिण भुजाके पास एक चक्कर-सा था, वहींपर वह पत्ता लगातार घूमा करता था, वह गागर रखकर खड़ी-खड़ी उसीको देखा करती थी। जब देखा, कुछ

दिन बाद वह लड़की बड़ी हो गई और अपनी एक लड़कीको साथ लेकर पानी भरने आई, वह लड़की भी फिर बड़ी हो गई, लड़कियोंके पानी उछालकर ऊधम मचानेपर वह भी उन्हें डाँटती-डपटती और भलेमानसों जैसा आचरण करनेकी शिक्षा देती, तब मुझे उस घीकुवाँरकी नाव बहानेकी बात याद आती और बड़ा कौतुक मालूम देता।

जो बात कहना चाहता हूं, वह आती ही नहीं। एक बात उठाता हूं, तब तक स्रोतमें दूसरी बात बह आती है। बातें आती हैं, चली जाती हैं, उन्हें थामकर नहीं रख सकता। एक-एक कहानी उस घीकुवाँरकी नावकी तरह चक्करमें पड़कर बिना विश्राम लिये लौट-लौट आती है। इसी तरह आज एक कहानी अपना बोझ लेकर मेरे आसपास घूम-फिर रही है,—अब डूबी कि अब डूबी। उस पत्तेकी तरह ही वह छोटीसी है, उसमें ज़्यादा-कुछ नहीं है, दो खेलके फूल हैं। उसे डूबते देखकर कोमल-हृदय बालिका सिर्फ एक लम्बी साँस खींचकर घर लौट जायगी।

मन्दिरके पास, जहाँ वह गुसांइयोंकी गोशालाका बाँसका बेंड़ा देख रहे हो, वहां एक बबूलका पेड़ था। उसीके नीचे सप्ताहमें एक रोज पैंठ लगती थी। तब तक गुसांइयोंने यहाँ घर-द्वार नहीं बनाया था। जहाँ अभी उनका चण्डी-मण्डप है, वहाँ एक फूँसकी झोंपड़ी मात्र थी।

यह वटवृक्ष जो आज मेरी पसलियोंमें हाथ फैलाकर विकट और लम्बी कठिन उँगलियोंकी भाँति अपनी जड़ोंसे मेरे विदीर्ण पाषाण-प्राणको मुट्ठीमें किये हुए है, यह वृक्ष तब इतनासा छोटा पौधा था,

बस। अपनी हरी-हरी नई पत्तियोंको लिये सिर उठाकर खड़ा हो रहा था। घाम पड़नेपर उसकी उन पत्तियोंकी छाँह मेरे ऊपर सारे दिन खेला करती, इसकी नई जड़ें बच्चोंकी उँगलियोंकी तरह मेरी छातीके पास चुलबुलाया करतीं। कोई इसकी एक भी पत्ती तोड़ता, तो मुझे पीर होती।

यद्यपि उम्र काफ़ी हो चुकी थी, पर तब भी मैं सीधा था। आज मैं, मेरुदण्ड टूट जानेसे अष्टवक्रकी तरह टेढ़ा-मेढ़ा हो गया हूं, गहरी त्रिवलि-रेखाओंकी तरह शरीरपर हज़ारों जगह दरारें पड़ गई हैं, मेरे भीतर दुनिया-भरके मेंढ़क जाड़ेके दिनोंमें लम्बी नींद सोनेकी तय्यारियां कर रहे हैं,—तब मेरी ऐसी दशा न थी। सिर्फ मेरी बाईं भुजामें बाहरकी तरफ दो ईंटोंकी कमी थी, उस खोहमें एक चिरैयाने घोंसला बना लिया था। तड़के ही जब वह करवट बदलकर जागती, मछलीकी पूँछकी तरह अपनी डबल पूँछको दो-चार बार ,जल्दी-जल्दी नचाकर सीटी देकर आकाशमें उड़ जाती, तब मैं समझ लेता कि कुसुमके घाटपर आनेका समय हुआ।

जिस लड़कीकी बात मैं कह रहा हूं, घाटकी और-और लड़कियाँ उसे कुसुम कहकर पुकारती थीं। शायद कुसुम ही उसका नाम था। पानीपर जब कुसुमकी छोटीसी छाया पड़ती, तो मेरे मनमें आता कि किसी तरह उस छायाको पकड़ रखूँ। उसमें कुछ ऐसी ही माधुरी थी। वह जब मेरे पाषाणपर पैर रखती और उसके दोनों पैरोंके छड़े बजते, तब मेरे शैवालगुल्म मानो पुलकित हो उठते। कुसुम बहुत ज़्यादा खेलती या बतराती हो, या हंसी-मसख़री करती

हो, सो भी नहीं, तो भी आश्चर्यकी बात यह थी कि उसकी जितनी भी साथिनें थीं, उनमेंसे उस जैसी कोई न थी। चंचल लड़कियोंका उसके बिना काम ही न चलता था। कोई उसे कुसी कहती, कोई खुसी और कोई राक्षसी! उसकी मा उसे कसूमी कहती। जब देखो तब कुसुम पानीके किनारे बैठी है। पानीके साथ उसके हृदयका मानो कोई घनिष्ठ सम्बन्ध है। पानी उसे बड़ा अच्छा लगता था।

कुछ दिन बाद कुसुमको फिर घाटपर नहीं देखा। भुवना और स्वर्णा घाटपर आकर रोतीं। सुननेमें आया कि उनकी कुसी-खुसी-राक्षसीको कोई सुसराल ले गया है। वहां सब नये आदमी हैं, नया घर-द्वार है और नया ही मार्ग और घाट। पानीके कमलको मानो कोई ज़मीनपर बोने ले गया हो।

धीरे-धीरे कुसुमकी बातें एक तरहसे भूल चुका हूं। एक वर्ष बीत गया। घाटकी लड़कियाँ कुसुमकी बात भी ऐसी-कुछ नहीं छेड़तीं। एक दिन सन्ध्याके समय बहुत दिनोंके परिचित पैरोंके स्पर्शसे सहसा मैं चौंक उठा। मालूम हुआ मानो कुसुमके पैर हैं। वे ही तो हैं, पर उन पैरोंमें अब छड़े नहीं बजते। उन पैरोंमें वह सङ्गीत नहीं है। कुसुमके पैरोंका स्पर्श और छड़ोंकी आवाज़, हमेशासे दोनोंको एकत्र अनुभव करता आया हूं,—आज सहसा उन छड़ोंकी आवाज़ न सुनकर सन्ध्या-समयका जल-कल्लोल कैसा उदास सुनाई पड़ने लगा, आमके बाग़में पत्तोंको खड़खड़ाती हुई बयार कैसा हाहाकार करने लगी।

कुसुम विधवा हो गई है। सुना है, उसका पति परदेशमें नौकरी

करता था; दो-एक दिनके सिवा पतिसे उसकी अच्छी तरह भेंट भी न हो पाई थी। पत्र द्वारा वैधव्यका समाचार पाकर आठ बरसकी उम्रमें माथेका सिन्दूर पोंछकर, शरीरके गहने उतारकर, फिर वह अपने देशमें इसी गङ्गाके किनारे लौट आई है। परन्तु उसकी संगिनियोंमेंसे भी अब ऐसी कोई नहीं रह गई हैं। भुवना, स्वर्णा, अमला, सब ससुरका घर सम्हालने चली गई हैं। सिर्फ शरत् है, पर सुनता हूं, अगहनमें उसका भी ब्याह हो जायगा। कुसुम बिलकुल अकेली रह गई है। परन्तु वह जब दोनों घुटनोंपर सिर रखकर चुपचाप सीढ़ियोंपर बैठी रहती, तब मुझे ऐसा मालूम पड़ता कि मानो नदीकी लहरें सब मिलकर हाथ उठाकर उसे कुसी-खुसी-राक्षसी कहकर पुकार रही हैं।

वर्षाके आरम्भमें गङ्गा जैसे प्रतिदिन देखते-देखते भर उठती है, कुसुम भी वैसे ही देखते-देखते प्रतिदिन सौन्दर्यसे यौवनसे भरने लगी। परन्तु उसके मलिन वसन, करुण मुख और शान्त स्वभावने उसके यौवनपर ऐसा एक छायामय आवरण डाल दिया है कि वह विकसित रूप सबके देखनेमें नहीं आता। कुसुम अब बड़ी हो गई है, इसपर किसीकी दृष्टि ही नहीं जाती। कम-से-कम मेरी तो नहीं जाती। मैंने कुसुमको उस बालिकासे बड़ी कभी नहीं देखा। उसके छड़े तो न थे, पर जब वह चलती, तो मुझे छड़ोंकी आवाज़ सुनाई पड़ती। इसी तरह दस वर्ष बीत गये, गांवके लोगोंको कुछ मालूम ही न पड़ा।

यह आज जैसा देख रहा हूं, उस वर्ष भी भाद्र मासके अन्तमें ऐसा ही एक दिन आया था। तुम्हारी परदादियोंने उस दिन सवेरे

उठकर इसी तरहका मधुर सूर्यका आलोक देखा था। वे जब इतना लम्बा घूँघट खींचकर गागर उठाकर मेरे ऊपर प्रभातके सूर्यालोकको और भी प्रकाशमय करनेके लिये, पेड़ोंमें होकर गाँवकी ऊँची-नीची सड़कों परसे बातें करती हुई चली आती थीं, तब तुम्हारी सम्भावना भी उनके मनके एक कोनेमें उदित न होती थी। तुम्हें जैसे उन बातोंकी ठीक-ठीक याद नहीं है, तुम्हारी दादियां भी सचमुच एक दिन खेलती-फिरती थीं, आजका दिन जैसा सत्य है, जैसा जीता-जागता है, वह दिन भी ऐसा ही सत्य था; तुम्हारी तरह करुण हृदय लेकर सुखमें दुःखमें वे तुम्हारी ही तरह डगमगाती हुई झूली हैं, वैसा ही आजका यह शरत्का दिन—उनसे रहित, उनके सुख-दुःखकी स्मृतिके लेशमात्रसे हीन आजका यह शरदृतुके सूर्य-किरणोंका सौन्दर्य—उनकी कल्पनाके सामने उससे भी अधिक अगोचर था।

उस दिन भोरसे ही उत्तरकी पहली बयार मन्द-मन्द बहती हुई खिले हुए बबूलके फूलोंमेंसे एकआध मेरे ऊपर उड़ाकर फेंक रही थी। मेरे पाषाणपर थोड़ी-थोड़ी ओसकी रेखाएँ पड़ी हुई थीं। उस दिन सवेरे न-जाने कहाँसे गोरे बदनके, सौम्य और उज्ज्वल चेहरेवाले, लम्बी देहके एक नवीन संन्यासीने आकर मेरे सामनेवाले उस शिव-मन्दिरमें आश्रय लिया। संन्यासीके आगमनकी बात गाँव-भरमें फैल गई। स्त्रियोंने गागरें रखकर बाबाजीको प्रणाम करनेके लिये मन्दिरमें जाकर भीड़ लगा दी।

भीड़ दिनों-दिन बढ़ने लगी। एक तो संन्यासी, दूसरे अनुपम रूप, तिसपर वे किसीकी अवहेलना नहीं करते, बच्चोंको गोदमें लेकर

बिठाते, माताओंसे घरके काम-धन्धोंकी बातें पूछते। स्त्री-समाजमें थोड़े ही दिनोंमें उनकी अत्यन्त प्रतिष्ठा हो गई—पुजने लगे। उनके पास पुरुष भी बहुत आते। किसी दिन भागवत पढ़ते, किसी दिन भगवद्गीताकी व्याख्या करते, किसी दिन मन्दिरमें बैठकर अनेक शास्त्रोंकी चर्चा करते। उनके पास कोई उपदेश सुनने आता, कोई मन्त्र लेने। कोई रोगकी औषधि जानने आता,—अहा क्या रूप है! जान पड़ता, मानो साक्षात् महादेव ही मनुष्य-शरीर धारण कर अपने मन्दिरमें आ बिराजे हैं।

संन्यासी प्रतिदिन तड़के ही सूर्योदयसे पहले जब शुक्रताराके सामने—गङ्गाके पानीमें गले तक डूबकर—धीर-गम्भीर स्वरसे सन्ध्या-वन्दन करते, तब मुझे पानीकी तरंगोंका कलकल शब्द न सुनाई देता। उनके उस कण्ठस्वरको सुनते-सुनते प्रतिदिन गङ्गाके पूर्व उपकूलमें आकाश गुलाबी हो उठता, बादलोंके किनारे-किनारे अरुण रंगकी रेखाएँ पड़ जातीं, अन्धकार मानो विकासोन्मुख कलीके आवरण-पटकी तरह फटकर चारों तरफ झुक जाता और आकाश-सरोवरपर ऊषाकी लाल आभा थोड़ी-थोड़ी करके निकल आती। मुझे जान पड़ता कि यह महापुरुष गंगाके पानीमें खड़े होकर पूर्वकी ओर दृष्टि किये जिस महामन्त्रका पाठ करते, उसीका एक-एक शब्द उच्चारित होता रहता और रजनीकी माया दूर होती जाती, चन्द्र और तारे पश्चिमको उतर जाते, सूर्य पूर्वाकाशमें उदित होता रहता, जगत्का दृश्यपट परिवर्तित हो जाता। यह कौन है मायावी! स्नान करके संन्यासी जब होम-शिखाके समान अपने लम्बे शुभ्र पुण्य-शरीरको

लेकर पानीसे निकलते, उनके जटाजूटसे पानी झरता रहता, तब नवीन सूर्य-किरणें उनके सारे अंगमें पड़कर प्रतिफलित हो उठतीं।

इस तरह और भी कई मास बीत गये। चैतके महीनेमें सूर्यग्रहणके समय हज़ारों आदमी गंगा-स्नानके लिये आये। बबूलके पेड़ोंके नीचे बड़ी-भारी पैंठ लगी। इसी मौक़ेपर संन्यासीके दर्शनके लिये भी बहुतसे आदमी आये। जिस गांवमें कुसुमकी ससुराल थी, वहांसे भी बहुतसी औरतें आई थीं।

सवेरे मेरी सीढ़ियोंपर बैठे संन्यासी जप कर रहे थे, उन्हें देखते ही सहसा एक स्त्री साथकी दूसरी स्त्रीका कंधा मसककर बोल उठी—"अरी ओ, ये तो अपनी कुसुमके मालिक हैं।"

एक स्त्री दो उँगलियोंसे अपने घूँघटको कुछ ऊँचा करके कहने लगी—"अरी हाँ री! ये तो हमारे चटर्जियोंके घरके छोटे भइयाजी हैं।" और एक जो थी, वह घूँघटका इतना आडम्बर न करती थी, उसने कहा—"हाँ री, वैसी ही नाक है, वैसी ही आँखें हैं!"

चौथीने सन्यासीकी तरफ बिना देखे ही गहरी साँस लेकर गागरसे पानीको धक्का देकर कहा—"हाय! वह अब कहां है! वह क्या अब आयेगा? कुसुमकी क्या ऐसी ही तक़दीर है!"

तब फिर किसीने कहा—"उसके इतनी डाढ़ी नहीं थी।" कोई बोली—"वह ऐसा दुबला न था।" कोई कहने लगी—"वह इतना लम्बा कहां था?"

इस प्रकार बातका एक तरहसे निर्णयसा हो गया, बात दब गई।

गांवके और-सबोंने संन्यासीको देखा था, सिर्फ कुसुमने नहीं

देखा। ज़्यादा आदमियोंका समागम होते रहनेसे कुसुमने मेरे पास आना बिलकुल ही छोड़ दिया था। एक दिन सन्ध्याके समय पूर्णिमाको आकाशमें चाँद उठते देख शायद हम दोनोंका पुराना सम्बन्ध उसे याद आ गया।

उस समय घाटपर और कोई न था। झींगुर अपनी 'झीं-झीं'की तान अलाप रहे थे। मन्दिरके घंटा-घड़ियालोंकी ध्वनि भी कुछ देर पहले बन्द हो गई थी, उसकी अन्तिम शब्द-तरंगें क्षीणतर होकर उस पारकी छायामय वन-श्रेणीमें जाकर छायाकी तरह विलीन हो गईं। पूरी चाँदनी छिटक रही है। ज्वारका पानी छप-छप कर रहा है। मेरे ऊपर छाया डालकर कुसुम बैठी है। हवा थमी हुई है, पेड़-पौधे चुपकी साध गये हैं। कुसुमके सामने गङ्गाके वक्ष-स्थलपर बेरोक-टोक फैली हुई चाँदनी है,—कुसुमके पीछे, आस-पास, पेड़-पत्तियोंमें, मन्दिरकी छायामें, टूटे-फूटे मकानोंकी भीतोंपर, पोखरके किनारे—सर्वत्र चाँदनी बिखर रही है। ताड़-वनका अन्धकार अपनी देह दुबकाकर मुँह छिपाकर बैठा हुआ है। छतिवनके पेड़ोंकी डालियोंपर चमगादड़ लटक रहे हैं। बस्तीके पास गीदड़ोंकी ज़ोरोंकी ध्वनि उठी और थम गई।

संन्यासी धीरे-धीरे मन्दिरके भीतरसे बाहर निकल आये। घाटपर आकर दो-एक सीढ़ी उतरते ही उनकी दृष्टि कुसुमपर पड़ी! अकेली स्त्रीको ऐसे एकान्त स्थानमें बैठी देख वे लौटना ही चाहते थे,—इतनेमें सहसा कुसुमने मुँह उठाकर पीछेकी ओर देखा।

उसके सिरका कपड़ा पीछेको खिसक गया। ऊर्ध्वमुख खिलते

हुए फूलपर जैसे चाँदनी पड़ती है, मुँह उठाते ही कुसुमके मुँहपर वैसे ही चाँदनी आ पड़ी। उसी क्षणमें दोनोंने एक दूसरेको देखा, मानो जान-पहचान हो गई। मालूम हुआ, मानो पूर्वजन्मका परिचय था।

सिरके ऊपरसे उल्लू बोलता हुआ उड़ गया। शब्दसे चकित होकर कुसुमने होश सम्हाला—सिरका कपड़ा खींच लिया। उठकर संन्यासीके पैरोंके पास जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

संन्यासीने आशीर्वाद देकर उससे पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है ?

कुसुम बोली—"मेरा नाम कुसुम।"

उस रातको फिर कोई बात न हुई। कुसुमका घर बहुत नज़दीक ही था, कुसुम धीरे-धीरे घरको चल दी। उस रातको संन्यासी बहुत देर तक मेरी सीढ़ियोंपर बैठे रहे। अन्तमें पूर्वका चाँद जब पश्चिमको पहुंच गया—संन्यासीके पीछेकी छाया सामने आ गई, तब वे उठकर मन्दिरमें चले गये।

उसके दूसरे दिनसे मैं देखता, कुसुम रोज़ आकर संन्यासीकी पदधूलि ले जाती। संन्यासी जब शास्त्र-व्याख्या करते, तब वह एक तरफ खड़ी होकर सुनती। संन्यासी प्रातःसन्ध्या कर चुकनेके बाद कुसुमको बुलाकर उसे धर्मकी बातें सुनाते। सब बातें क्या वह समझ सकती थी ? परन्तु खूब मन लगाकर ध्यानसे चुपचाप बैठी-बैठी सब सुना करती। संन्यासी उसे जैसा उपदेश देते, वह हूबहू वैसा ही उसका पालन करती। प्रतिदिन वह मन्दिरका काम करती, देव-सेवामें आलस्य नहीं करती, पूजाके लिए फूल चुनती, गङ्गासे पानी भरकर मन्दिर धोती।

संन्यासी उसे जितनी भी बातें बताते, मेरी सीढ़ियोंपर बैठकर वह उन्हींको सोचा करती। धीरे-धीरे उसकी दृष्टि मानो दूर तक फैल गई ; उसने जो देखा नहीं था, अब उसे वह देखने लगी; जो सुना नहीं था, उसे सुनने लगी। उसके प्रशान्त मुखमण्डल पर जो एक म्लान छाया थी, वह दूर हो गई। प्रातःकालमें जब वह भक्ति-भावसे संन्यासीके पैरोंके पास लोट जाती, तब वह देवतापर चढ़ाये हुए ओससे धुले पूजाके फूलके समान दीखती। एक सुविमल प्रफुल्लता उसके सारे शरीरको प्रकाशमय बना देती।

शीतऋतुके इस अवसानके समय जाड़ेकी हवा चलती है, और किसी-किसी दिन सन्ध्याके समय सहसा दक्षिणसे वसन्तकी पवन बहने लगती है, आकाशसे ओसका भाव एकबारगी दूर हो जाता है। बहुत दिन बाद गाँवमें बंसी बजने लगती है, गीतकी ध्वनि सुनाई पड़ती है। मल्लाह लोग स्रोतमें नाव बहाकर डाँड़ खेना बन्द करके श्याम-कन्हैयाके गीत गाने लगते हैं। इस डालीसे उस डालीपर सहसा पक्षीगण परम उल्लाससे उत्तर-प्रत्युत्तर करना शुरू कर देते हैं। ऋतु अब ऐसी ही आ गई है।

वसन्तकी हवा लगनेसे मेरे पाषाण-हृदयके भीतर भी मानो कुछ-कुछ यौवनका संचार हो रहा है ; मेरे हृदयके भीतरके उस नवयौवनो-छ्वासको आकर्षित करके ही मानो मेरी लताएँ और पौधे देखते-देखते फूलोंसे एकबारगी विकसित हुए जा रहे हैं। इस समय, कुसुमको अब नहीं देखता। कुछ दिनसे वह मन्दिरमें भी नहीं आती, संन्यासीके पास भी उसे नहीं देखता।

इसी बीचमें क्या हो गया, मैं कुछ भी न समझ सका। कुछ दिन बाद, एक दिन सन्ध्याके समय मेरी ही सीढ़ियोंपर संन्यासीके साथ कुसुमकी भेंट हुई।

कुसुमने सिर झुकाकर कहा—"प्रभु, क्या मुझे आपने बुलाया था?"

"हाँ, तुम दिखाई क्यों नहीं देतीं? आजकल देव-सेवामें तुम्हारी इतनी लापरवाही क्यों हो गई?"

कुसुम चुपचाप खड़ी रही!

"मुझसे तुम अपने मनकी बात खोलकर कहो।"

कुसुमने कुछ मुँह फेरकर कहा—"प्रभु, मैं पापिन हूँ, इसीलिये ऐसी लापरवाही है।"

संन्यासीने अत्यन्त स्नेह-पूर्ण स्वरमें कहा—"कुसुम, तुम्हारे हृदयमें अशान्ति पैदा हो गई है, मैं यह समझ गया हूँ।"

कुसुम मानो चौंक उठी,—उसने शायद समझा, संन्यासीने न-जाने कितना समझा होगा। उसकी आँखें धीरे-धीरे डबडबा आईं, वह वहींपर बैठ गई; आँचलसे मुँह ढककर सीढ़ीपर संन्यासीके पैरोंके पास बैठी-बैठी रोने लगी।

संन्यासीने कुछ दूर हटकर कहा—"अपनी अशान्तिकी बात तुम मुझसे साफ-साफ कहो, मैं तुम्हें शान्तिका मार्ग बताऊँगा।"

कुसुमने अटल भक्तिके स्वरमें कहना प्रारम्भ किया, पर बीच-बीचमें वह रुक-रुक गई, कहीं-कहीं बातें अटक गईं—"आप आज्ञा देंगे, तो अवश्य कहूंगी। पर, मैं अच्छी तरह न कह सकूँगी, लेकिन

आप तो शायद मन-ही-मन सब कुछ समझ रहे होंगे। प्रभु, मैं एक जनेको देवताके समान भक्ति करती थी, मैं उनकी पूजा करती थी, उस आनन्दसे मेरा हृदय भर गया था। एक दिन रातको स्वप्नमें देखा, मानो वे मेरे हृदयके स्वामी हैं, न-जाने कहाँ एक बकुल-वनमें बैठकर अपने बाएँ हाथमें मेरा दाहिना हाथ लिये मुझे वे प्रेमकी बातें सुना रहे हैं। यह घटना मुझे ज़रा भी असम्भव—कुछ भी आश्चर्यकी—नहीं मालूम दी। स्वप्न टूट गया, पर स्वप्नका आवेश न गया। उसके दूसरे दिन जब उन्हें देखा, तो वैसे न थे। उनमें उसी स्वप्नकी तसवीर उदित होने लगी। डरसे दूर भाग गई, पर वह तसवीर मेरे साथ-ही-साथ रही। तभीसे मेरे हृदयकी अशान्ति दूर नहीं होती,—मेरा सब-कुछ अन्धकारमय हो गया है।"

जब कुसुम आँसू पोंछती हुई बातें कह रही थी, तब मैं अनुभव कर रहा था कि संन्यासीने अपने दाहिने पैरसे मेरा पाषाण दबा रक्खा है।

कुसुमकी बात समाप्त होनेपर संन्यासीने कहा—"जिसे स्वप्नमें देखा था, वह कौन है—बताना पड़ेगा।"

कुसुमने हाथ जोड़कर कहा—"सो मैं नहीं बता सकूँगी।"

संन्यासीने कहा—"तुम्हारे मङ्गलके लिये ही पूछ रहा हूँ, वह कौन है, साफ-साफ बताओ।"

कुसुमने ज़ोरोंसे अपने कोमल हाथोंको दबाकर, हाथ जोड़कर कहा—"तो क्या बताना ही पड़ेगा!"

संन्यासीने कहा—"हाँ, बताना ही पड़ेगा।"

कुसुम उसी दम बोल उठी—"प्रभु, तुम्हीं तो हो!"

ज्योंही उसकी अपनी बात अपने कानोंमें पड़ी, त्योंही वह मूर्च्छित होकर मेरी गोदमें गिर पड़ी। संन्यासी पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़े रहे।

जब मूर्च्छा छूटी, कुसुम उठकर बैठी, तब संन्यासीने धीरे-धीरे कहा—"तुमने मेरी सभी बातें पालन की हैं; और भी एक बात पालन करनी होगी। मैं आज ही यहांसे जा रहा हूँ, मेरे साथ तुम्हारी भेंट न होने पावे। मुझे तुम भूल जाओ। बताओ इतनी तपस्या करोगी!"

कुसुम उठकर खड़ी हो गई और संन्यासीके मुँहकी ओर देखकर धीर स्वरसे बोली—"प्रभु, ऐसा ही होगा।"

संन्यासीने कहा—"तो मैं जाता हूँ।"

कुसुमने और कुछ न कहके उन्हें प्रणाम किया, उनके पैरोंकी धूल सिरसे लगाई। संन्यासी चले गये।

कुसुमने कहा—"आज्ञा दे गये हैं—उन्हें भूलना होगा।" कहती हुई वह धीरे-धीरे गङ्गाके पानीमें उतरी।

छोटेपनसे उसने इसी पानीके किनारे दिन बिताये हैं, श्रान्तिके समय यह पानी यदि हाथ बढ़ाकर उसे गोदमें न लेगा, तो और कौन लेगा! चाँद अस्त हो गया, रात्रि घोर अन्धकारमय हो गई। पानीका शब्द सुनाई पड़ा, और कुछ भी समझमें न आया। अन्धकारमें हवा सनसनाने लगी; शायद कुछ दीख न जाय, यह सोचकर हवाने मानो फूँककर आकाशके तारोंको बुझा देना चाहा।

मेरी गोदमें जो खेला करती थी, वह आज अपना खेल समाप्त कर मेरी गोदसे खिसक गई, मैं जान भी न पाया।

(विक्रम संवत् १९४१)

सड़ककी बात

मैं सड़क हूं। अहल्या जैसे मुनिके शापसे पाषाण हो गई थी, मैं भी वैसे ही मानो किसीके शापसे चिर-निद्रित बड़े-भारी अजगरकी तरह, वन-जङ्गल-पर्वतोंमें होकर, पेड़ोंकी छायाके नीचेसे, सुविस्तृत प्रान्तरके ऊपरसे, देश-देशान्तरको वेष्टन करती हुई बहुत दिनोंसे जड़-निद्रामें सोई हुई हूं! असीम धैर्यके साथ धूलमें लोटकर शापकी अन्तिम घड़ियोंकी प्रतीक्षा कर रही हूं। मैं हमेशासे स्थिर हूं, अचल हूं, हमेशासे एक ही करवटसे सो रही हूं, किन्तु फिर भी मुझे एक घड़ीके लिये भी विश्राम नहीं। इतनी भी छुट्टी नहीं कि अपनी इस कठिन और सूखी सेजपर एक भी कोमल स्निग्ध हरी घास उगा सकूं! इतना भी समय नहीं कि अपने सिरहानेके पास बहुत छोटासा नीले रंगका एक वनफूल खिला सकूं! बोल नहीं सकती, पर अन्धेकी तरह सभी-कुछ अनुभव कर रही हूं। रात और दिन पैरोंकी आहट—सिर्फ पैरोंकी आहट! मेरी इस जड़-निद्रामें हजारों-लाखों

चरणोंके शब्द दिन-रात दुःस्वप्नकी तरह घूमते रहते हैं। मैं उन चरणोंके स्पर्शसे उनके हृदयको पढ़ सकती हूं। मैं समझ जाती हूं, कौन घर जा रहा है, कौन कामपर जा रहा है, कौन आराम करने जा रहा है, कौन उत्सवमें जा रहा है और कौन श्मशानको जा रहा है। जिसके सुखकी गिरस्ती है—स्नेहकी छाया है, वह प्रत्येक क़दमपर सुखकी तसवीर खींचता चलता है, हर क़दमपर आशाके बीज बोता जाता है; जान पड़ता है, जहां-जहां उसके पैर पड़े हैं, मानो वहां क्षण-भरमें ही एक-एक लता अंकुरित और पुष्पित हो उठेगी। जिसके घर नहीं, आश्रय नहीं, उसके पदक्षेपमें न आशा है, न अर्थ है; उसके क़दममें न दायां है, न बायां है; उसके पैर कहते रहते हैं—'मैं चलूं तो क्यों, और ठहरूं तो किस लिये?' उसके पदक्षेपसे मेरी सूखी धूल मानो और भी सूख जाती है।

दुनियांकी कोई भी कहानी मैं पूरी नहीं सुन पाती। आज सैकड़ों-हजारों वर्षोंसे मैं लाखों-करोड़ों लोगोंकी कितनी हँसी, कितने गाने, कितनी बातें सुनती आई हूं; पर थोड़ीसी सुन पाती हूं। बाक़ीकी सुननेके लिये जब कान खड़े करती हूं, तब देखती हूं कि वह आदमी ही नहीं रहा! ऐसी कितने ही बरसोंकी कितनी ही टूटी-फूटी बातें, कितने ही बिखरे हुए गाने मेरी धूलके साथ धूल बन गये हैं, मेरी धूलके साथ उड़ते रहते हैं, इसे क्या कोई जान सकता है! वह सुनो, कोई गा रही है—"कहूं-कहूं, पर कह नहीं पाई।"—अह, ज़रा ठहरो, गानेको पूरा कर जाओ, पूरी बात सुन लूं! पर कहां ठहरी वह? गाते-गाते न जाने कहां चली गई, अन्त तक मैं सुन न पाई। यह एक ही पद

आधी रात तक मेरे कानोंमें गूँजता रहेगा। मन-ही-मन सोचूँगी, वह कौन थी? कहां जा रही है न-जाने! जो बात कह नहीं पाई है, क्या उसे ही फिर कहने जा रही है? अबकी जब सड़कपर फिर उससे भेंट होगी, वह जब मुँह उठाकर इसके मुँहकी तरफ ताकेगा, तब कहूं-कहूं करके फिर भी यदि न कह पाई, तो! तब सिर नीचा करके मुँह फेरकर बहुत धीरे-धीरे लौटते समय फिर भी यदि वह गावे—"कहूं-कहूं, पर कह नहीं पाई।"

समाप्ति और स्थायित्व शायद कहीं होगा, पर मुझे तो नहीं दिखाई देता। एक चरण-चिह्नको भी तो मैं अधिक देर तक थामकर नहीं रख सकती। अविश्राम चिह्न पड़ रहे हैं, फिर नये पैर आकर अन्य पैरोंके चिह्नोंको पोंछ जाते हैं। जो चला जाता है, वह तो पीछे कुछ छोड़ ही नहीं जाता; यदि उसके सिरके बोझसे कुछ मिलता भी है, तो सहस्र चरणोंके तले लगातार कुचला जाकर कुछ ही देरमें वह धूलमें मिल जाता है। परन्तु एक बात अब भी देख रही हूं, किसी-किसी महापुरुषके पुण्य-स्तूपके अन्दर ऐसा एक अमर बीज पड़ गया है, जो धूलमें पड़कर भी अंकुरित और वर्द्धित होकर मेरे बगलमें स्थायीरूपसे विराज रहा है, और नये पथिकोंको छाया प्रदान कर रहा है।

मैं किसीका भी लक्ष्य नहीं हूं—सबका उपाय-मात्र हूं। मैं किसीका घर नहीं हूं, पर सबको घर ले जाती हूं। मुझे दिन-रात यही शोक रहता है कि मुझपर कोई चरण नहीं रखता—मुझपर कोई खड़ा रहना नहीं चाहता। जिनका घर बहुत दूर है, वे मुझे ही कोसते और शाप

देते हैं। मैं जो उन्हें परम धैर्यके साथ उनके घरके द्वार तक पहुंचा देती हूं, उसके लिए कृतज्ञता कहां पाती हूं? वे घर जाकर आराम करते हैं, घरपर आनन्द लूटते हैं, घरमें उनका सुख-सम्मिलन होता है, और मुझपर केवल थकावटका भाव दरसाते हैं, केवल अनिच्छा-कृत श्रम हुआ समझते हैं, केवल विच्छेदका कारण मानते हैं। क्या इसी तरह बार-बार, दूर ही से, घरके झरोखोंसे पंख पसारकर सूर्यालोकमें आती हुई मधुर हास्य-लहरी मेरे पास आते ही शून्यमें अदृश्य हो जायगी! घरके उस आनन्दकी एक बूँद भी मैं नहीं पाऊँगी?

कभी-कभी वह भी पाती हूं। छोटे-छोटे बच्चे हँसते-हँसते शोरगुल मचाते हुए मेरे पास आकर खेलते हैं। अपने घरका आनन्द वे रास्तेपर ले आते हैं। उनके पिताका आशीर्वाद, माताका स्नेह घरसे बाहर निकलकर सड़कपर आकर भी मानो घर बना देता है। मेरी धूलमें वे स्नेह दे जाते हैं। मेरी धूलको वे वशमें कर लेते हैं, और अपने छोटे-छोटे कोमल हाथोंसे उसकी ढेरीपर मृदु-मृदु थपकियाँ देकर परम स्नेहसे उसे सुलाया चाहते हैं। निर्मल हृदय लेकर बैठे-बैठे उसके साथ बातें करते हैं। हाय-हाय! इतना स्नेह पाकर भी मेरी वह धूल उसका उत्तर तक नहीं दे सकती!

छोटे-छोटे कोमल पाँव जब मेरे ऊपरसे चले जाते हैं, तब अपनेको मैं बड़ी कठिन अनुभव करती हूं; मालूम होता है, उनके पाँवोंमें लगती होगी। उस समय मुझे कुसुम-कलीकी तरह कोमल होनेकी साध होती है।

राधिकाने कहा है :—

"जहँ जहँ अरुन चरन चलि जाता,
तहँ तहँ धरनि होय मम गाता !"

अरुण चरण ऐसी कठोर धरतीपर क्यों चलते हैं? पर वे यदि न चलते, तो शायद कहीं भी हरी-हरी घास पैदा न होती।

प्रतिदिन नियमितरूपसे जो मेरे ऊपरसे चलते हैं, उन्हें मैं अच्छी तरह पहचानती हूं। पर वे नहीं जानते कि उनके लिये मैं प्रतीक्षा किया करती हूं। मैं मन-ही-मन उनकी मूर्तिकी कल्पना कर लेती हूं। बहुत दिन हुए, ऐसी ही एक प्रतिमा अपने कोमल चरणोंको लेकर दोपहरको बहुत दूरसे आती—छोटे-छोटे दो नूपुर रुनझुन-रुनझुन करके उसके पाँवोंमें रो-रोकर बजते। शायद उसके ओठ बोलनेके ओठ न थे, शायद उसकी बड़ी-बड़ी आँखें सन्ध्याके आकाशकी भाँति म्लान दृष्टिसे मुँहकी ओर देखती रहती थीं। उस चबूतरावाले बट-वृक्षके बाईं तरफ, जहांसे मेरी एक शाखा गाँवकी ओर चली गई है, वहां वह पेड़के नीचे हारी-थकी चुपचाप खड़ी रहती। दूसरा एक कोई दिन-भरका काम पूरा करके अनमने मनसे गाना गाता हुआ उस समय गाँवकी ओर चला जाता। वह शायद किसी भी तरफ़ ताकता न था, कहीं भी ठहरता न था, सीधा घरके द्वारपर जाकर अपना पूरबी गाना समाप्त करता था। उसके चले जानेपर वह बालिका थके हुए पैरोंसे फिर उसी रास्तेसे लौट जाती, जिससे वह आई थी। बालिका जब लौटती, तब मालूम होता कि अन्धकार हो आया है।

सन्ध्याके अन्धकारका ठंडा स्पर्श मैं सारे अङ्गोंपर अनुभव करने लगती। तब गोधूलिके समयकी कौओंकी काँव-काँव बिलकुल थम जाती; पथिकोंका आना-जाना क़रीब-क़रीब बन्द-सा हो जाता। सन्ध्याकी पवनसे बाँसके झाड़ रह-रहकर झरझर-झरझर शब्द कर उठते। इसी तरह वह प्रतिदिन धीरे-धीरे आती और वैसे ही धीरे-धीरे चली जाती। एक दिन, फागुनके अन्तके दिनोंमें दोपहरको जब आमके बौर हवासे झड़ रहे थे, तब वह दूसरा जो आता था, न आया। उस दिन बहुत रात बीते बालिका घर लौट गई। जैसे बीच-बीचमें पेड़ोंसे सूखे पत्ते झड़ रहे थे, वैसे ही कभी-कभी दो-एक बूँद आँसू मेरी नीरस तप्त धूलिपर पड़ते और सूख जाते थे। फिर उसके दूसरे ही दिन दोपहरको वह बालिका उसी पेड़के नीचे आकर खड़ी हुई, पर उस दिन भी वह न आया। फिर रातको वह धीरे-धीरे घरकी तरफ चल दी। कुछ दूर जाकर उससे चला न गया। मेरे ऊपर धूलपर लोट गई। दोनों हाथोंसे मुँह ढककर छाती फाड़-फाड़कर रोने लगी। कौन हो बिटिया! क्या इस निर्जन रात्रिमें भी कहीं कोई मेरी छातीपर आश्रय लेने आता है! तू जिसके पाससे लौटी है, वह क्या मुझसे भी कठोर है! तूने जिसे पुकारकर उत्तर नहीं पाया, क्या वह मुझसे भी बढ़कर गूंगा है! तूने जिसकी तरफ देखा है, क्या वह मुझसे भी ज़्यादा अन्धा है!

बालिका उठ बैठी, खड़ी हो गई, आँखें पोंछ डालीं,—सड़क छोड़कर चली गई। शायद वह घर लौट गई, शायद वह अब भी शान्तमुखसे घरका काम-धन्धा करती होगी,—शायद वह किसीसे भी

अपने किसी दुःखकी बात नहीं कहती ; सिर्फ किसी-किसी दिन सन्ध्याके समय घरके आंगनमें चन्द्रमाकी चाँदनीमें पैर फैलाकर बैठी रहती है ; कोई बुलाता, तो चौंक पड़ती और झट उठकर भीतर चली जाती है। किन्तु मैंने उसके दूसरे दिनसे आज तक फिर कभी उसके चरणोंके स्पर्शका अनुभव नहीं किया।

ऐसे कितने ही पैरोंके शब्द नीरव हो गये हैं। मैं क्या इतनी याद रख सकती हूं! सिर्फ उन पैरोंकी करुण नूपुरध्वनि अब भी कभी-कभी याद आ जाती है। पर मुझे क्या घड़ी-भर शोक करनेकी छुट्टी मिलती है? शोक किस-किसके लिये करूँ? ऐसे कितने ही आते हैं, और चले जाते हैं!

कैसी कड़ी घाम है! उफ्-उफ्! एक-एक बार उसास छोड़ती हूं और तपी हुई धूल सुनील आकाशको धुआँधार करके उड़ी चली जाती है। अमीर और ग़रीब, सुखी और दुःखी, यौवन और बुढ़ापा, हँसी और रोना, जन्म और मृत्यु—सभी मेरे ऊपरसे एक ही उसासमें धूलके स्रोतकी तरह उड़े जा रहे हैं। इसीलिये सड़कको न हँसी है, न रोना। घर ही बीते-हुए पर शोक करता है, वर्तमानके लिये सोचता है, भविष्यके लिये आशामें डूबा रहता है। परन्तु सड़क, वह तो वर्तमानके प्रत्येक पलमें सैकड़ों-हजारों नये-नये अतिथियोंको लेकर ही व्यस्त रहती है। ऐसे स्थानपर, अपने पद-गौरवपर विश्वास करके अत्यन्त दर्पके साथ पैर रखता हुआ कौन अपने चिरचरण-चिह्न रख जानेका प्रयास करता है! जिनके लिये यहांकी हवामें तुम दीर्घ-निःश्वास छोड़ जाते

हो, तुम्हारे चले आनेपर क्या वे तुम्हारे पीछे तुम्हारे लिये विलाप करते रहेंगे ? तुम्हारे वे दीर्घ-निःश्वास क्या नये अतिथिकी आँखोंमें आँसू खींच लायँगे ? हवापर हवा क्या टिक सकती है ? नहीं-नहीं, वृथा चेष्टा है। मैं अपने ऊपर कुछ भी पड़ा रहने नहीं देती,— न हँसी, न रोना। सिर्फ मैं ही अकेली पड़ी हुई हूं।

(वि० सं० १६४२)

देन-लेन

पांच लड़कोंके बाद जब एक लड़की पैदा हुई, तो मा-बापने बड़े प्यारसे उसका नाम निरुपमा रखा। इस कुलमें ऐसा शौक़ीनी नाम इससे पहले कभी सुननेमें नहीं आया। अकसर देवी-देवताओंके नाम ही रखे जाते थे—गणेश, कार्तिक, पार्वती, उसके उदाहरण हैं।

अब निरुपमाके ब्याहकी बात चल रही है। उसके पिता रामसुन्दर मित्रने बहुत तलाश किया, पर पसन्दका कोई लड़का ही नहीं मिला। आखिर बड़े-भारी एक रायबहादुर रईसके घर उनके इकलौते पुत्रकी इन्होंने टोह लगाई। रायबहादुरके बाप-दादोंकी सम्पत्ति यद्यपि बहुत-कुछ नष्ट हो चुकी थी, पर था वह खानदानी घराना।

लड़केवालोंकी तरफ़से दस हज़ार रुपये नक़द और काफ़ीसे ज़्यादा दहेजकी मांग पेश हुई। रामसुन्दर बिना कुछ सोचे-समझे ही इस बातपर राज़ी हो गये। कारण, ऐसे लड़केको किसी भी तरह हाथसे न जाने देना चाहिये।

रुपयेका इन्तज़ाम आख़िर किसी तरह हुआ ही नहीं। गिरवी रखकर, बेचकर, बहुत कोशिश करनेपर भी छह-सात हज़ारकी कमी आख़िर रह ही गई! इधर ब्याहके दिन क़रीब आ रहे हैं।

अन्तको ब्याहका दिन भी आ गया। बहुत ज़्यादा ब्याजपर एकने बाक़ी रुपया देना भी कबूल किया था, पर वक़्तपर वह लापता हो गया। विवाह-मण्डपमें बड़ी-भारी कांय-कांय मच गई—बड़ा क्षोभ फैल गया। रामसुन्दरने रायबहादुरको हाथ-पैर जोड़कर कहा—"शुभकार्य पूरा हो जाने दीजिये, रुपये मैं अवश्य ही अदा कर दूँगा।" रायबहादुर बोले—"रुपया बिना पाये लड़का मण्डपमें नहीं आ सकता।"

इस दुर्घटनासे अन्तःपुरमें रोना-सा पड़ गया। इस भारी विपत्तिका जो मूल कारण है, वह ब्याहके कपड़े पहने, गहने पहने, माथेपर चन्दन लेपे चुपचाप बैठी है! भावी श्वशुर-कुलपर उसकी भक्ति या प्रेम खूब बढ़ रहा था या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

इतनेमें एक बात नई पैदा हुई। लड़का सहसा अपने पितृदेवताके ख़िलाफ़ हो गया। वह बापसे कह बैठा—"ख़रीद-बिक्री, भाव-तावकी बात मैं नहीं समझता; विवाह करने आया हूं, विवाह करके ही जाऊँगा।"

बापने जिसे सामने पाया, उसीसे कहा—"देखा साहब, आजकलके लड़कोंका ढंग!" दो-एक प्रवीण पुरुष थे, उन्होंने कहा—"शास्त्र-शिक्षा और नीति-शिक्षा तो बिलकुल रही ही नहीं, इसीसे!"

वर्तमान शिक्षाका विषमय फल अपनी सन्तानमें प्रत्यक्ष देखकर रायबहादुर हतोद्यम हो बैठ रहे। विवाह किसी तरह हो गया, पर उदासीसे—बिना आनन्दके।

ससुराल विदा करते समय निरुपमाको हृदयसे लगाकर बाप आँखोंके आँसू न रोक सके। निरुपमाने पूछा—"वे लोग क्या अब मुझे आने नहीं देंगे, बाबूजी?"

रामसुन्दरने कहा—"क्यों नहीं आने देंगे, बिटिया! मैं तुझे लिवा आऊँगा।"

रामसुन्दर अक्सर लड़कीको देखने जाते हैं, पर समधीके घर उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं। नौकर-चाकर तक उन्हें बुरी निगाहसे देखते हैं। अन्तःपुरके बाहर एक अलहदे कमरेमें पांच मिनटके लिये किसी दिन लड़कीसे मिल पाते, किसी दिन यों ही लौट आते।

समधियानेमें ऐसा अपमान तो सहा नहीं जाता। रामसुन्दरने तय किया कि जैसे हो, रुपये तो अदा कर ही देने चाहिये।

परन्तु जो ऋण-भार अभी सिरपर है, उसीका पार उतारना कठिन है। गिरस्तीका खर्च भी किसी तरह खींचातानीसे चल रहा है, और कर्ज़वालोंकी निगाहसे बचनेके लिये तो तरह-तरहके हीले-हवाले सोचने पड़ते हैं।

इधर ससुरालमें उठते-बैठते लड़कीको जली-कटी सुननी पड़ती हैं। मायकेकी निन्दा सुनकर कमरेका दरवाज़ा बन्दकर आँसू बहाना तो उसका रोज़का काम हो गया है।

ख़ासकर सासकी घुड़की-झिड़की तो किसी तरह भी नहीं रुकतीं।

अगर कोई कहता—"अहा, कैसी शकल है! बहूका मुँह देखकर तो तबीयत खुश हो जाती है!" सास झमककर बोल उठतीं—"होगी नहीं! जैसे घरकी लड़की है, शकल भी तो वैसी ही होगी।"

और तो क्या, बहूके खाने-पहरने तककी कोई खबर नहीं लेता। अगर कोई दयावान् पड़ोसिन किसी त्रुटिका ज़िकर करती, तो सास कहती—"बस, बहुत है इतना ही!" यानी, बाप अगर पूरे रुपये देता, तो लड़कीको पूरी ख़ातिर होती। सभी ऐसा भाव दिखलाते, मानो बहूका यहां कुछ हक़ ही नहीं है—वह धोखेसे घुस आई है।

शायद, लड़कीके इस अनादर और अपमानकी बात उसके बापके कानों तक गई होगी। इसीसे रामसुन्दर अन्तमें रहनेका मकान तक बेचनेकी कोशिश करने लगे।

परन्तु लड़कोंसे यह बात छिपा रखी कि वे उन्हें गृह-हीन करनेपर तुले हैं। निश्चय किया था कि मकान बेचकर उसीको किरायेपर लेकर रहेंगे; ऐसी तरक़ीबसे चलेंगे कि उनके मरनेसे पहले लड़कोंको यह बात मालूम ही न पड़ेगी।

पर लड़कोंको यह बात मालूम हो गई। सब आकर रोने लगे। विशेषतः बड़े तीनों लड़के विवाहित हैं और उनमेंसे किसी-किसीके बच्चे भी हैं। उनकी आपत्तिने बड़ा गम्भीर रूप धारण किया, आख़िर मकान बेचना स्थगित रहा।

तब रामसुन्दर जगह-जगहसे मोटी ब्याजपर थोड़े-थोड़े रुपये कर्ज़ लेने लगे। ऐसा हुआ कि गिरस्तीका खर्च चलना मुशकिल हो गया।

निरुपमा बापका मुँह देखकर सब समझ गई। वृद्ध पिताके सफेद बालोंपर, सूखे मुँहपर, और सदा संकुचित भावपर दैन्य और दुश्चिन्ताकी छाया साफ़-साफ़ दिखाई देने लगी। लड़कीके सामने जब बाप अपराधी है, तब उस अपराधका अनुताप क्या छिपाया जा सकता है? रामसुन्दर जब समधियानेमें अनुमति पाकर क्षण-भरके लिये लड़कीसे मिलते, तब बापकी छाती किस तरह फटती, सो तो उनकी हँसी देखनेसे ही मालूम हो सकता था।

महज़ पिताके व्यथित हृदयको सान्त्वना देनेके लिये कुछ दिनसे मायके जानेके लिये निरुपमा अधीर हो उठी है। बापके सूखे मुँहको देखकर वह अब दूर नहीं रह सकती। एक दिन रामसुन्दरसे उसने कहा—"बाबूजी, मुझे घर ले चलो।" रामसुन्दरने कहा—"अच्छी बात है।"

परन्तु उनका कोई बस नहीं—अपनी कन्यापर पिताका जो स्वाभाविक अधिकार होता है, वह मानो दहेजके रुपयोंके बदले गिरवी रख देना पड़ा है। और तो क्या, लड़कीसे मिलनेके लिये भी, बड़े संकोचके साथ, भीख-सी मांगनी पड़ती है, और किसी-किसी समय निराश होनेपर, दूसरी बात कहनेका भी मुँह नहीं रहता।

पर लड़की जब खुद मायके आना चाहती है, तब भला बाप उसे बिना लाये कैसे रह सकता है। इसीसे, समधीकी सेवामें इस बातकी दरख्वास्त पेश करनेके पहले रामसुन्दरने कितनी हीनता, कितना अपमान, कितनी हानि स्वीकार करके तीन हज़ार रुपये इकट्ठे किये थे, उसके इतिहासका गुप्त रहना ही अच्छा है।

नोटोंको रूमालमें लपेटकर चद्दरमें बाँधकर रामसुन्दर समधीके पास जाकर बैठे। पहले मुँहपर हँसी लाकर मुहल्लेकी बात छेड़ी। हरेकृष्णके घरपर बड़ी-भारी चोरी हो गई है, उसका शुरूसे आख़िर तक ब्योरा बताया। नवीनमाधव और राधामाधव इन दोनों भाइयोंकी तुलना करके, विद्या-बुद्धि और स्वभावके बारेमें राधामाधवकी प्रशंसा और नवीनमाधवकी निन्दा की; शहरमें एक नई बीमारी फैली है, उसके बारेमें बहुत-सी अजीब-अजीब बातें कहीं; अन्तमें हुक्केको एक किनारेसे रखकर बातों-ही-बातोंमें बोले—"हें—हें, समधी साहब, आपके रुपये तो अभी बाक़ी ही हैं। जब आता हूं, तभी सोचता हूं कि कुछ लिये चलूँ, पर चलते वक़्त याद ही भूल जाती है। अब तो भाई, बूढ़ा हो चला हूं!" इस तरह एक लम्बी भूमिका बाँधते हुए पसलीकी तीन हड्डियोंके समान उन तीन नोटोंको मानो बहुत आसानीसे—बड़ी लापरवाहीसे निकाला। ले-देकर सिर्फ तीन हज़ारके नोट देखकर रायबहादुर क़हक़हा मारकर हँस उठे। बोले—"रहने दो, समधी, मुझे ये न चाहिये।" एक प्रचलित कहावतका उल्लेखकर उन्होंने कहा, ज़रासे-के वास्ते हाथ गन्दे करना नहीं चाहते।

ऐसी घटनाके बाद लड़कीको विदा करनेकी बात किसीके मुँहसे नहीं निकलती,—पर रामसुन्दरने सोचा कि रिश्तेदारीका संकोच अब मेरे लिये शोभा नहीं देता। हृदयपर गहरी चोट पहुंचनेसे कुछ देर तो वे चुप रहे; फिर अन्तमें उन्होंने नरमाईसे उसका ज़िकर किया। रायबहादुरने, किसी कारणका उल्लेख बिना किये ही, कहा—"यह तो

अभी नहीं हो सकता।" इतना कहकर वे किसी कामसे बाहर चले गये।

रामसुन्दर लड़कीको मुँह न दिखाकर, काँपते हुए हाथोंसे उन नोटोंको चद्दरके छोरमें बाँधकर सीधे घर लौट आये। मन-ही-मन प्रतिज्ञा की—"जब तक सब रुपये चुकाकर लड़कीपर निस्संकोच अधिकार न पा लूँगा, तब तक समधीके घर न जाऊँगा।"

बहुत दिन बीत गये। निरुपमा आदमीपर आदमी भेजती, पर पिताके दर्शन नहीं पाती। आखिर कुढ़कर आदमी भेजना बन्द कर दिया,—तब रामसुन्दरके मनमें बड़ी चोट लगी, पर फिर भी वे गये नहीं।

कुआरका महीना आया। रामसुन्दरने कहा—"अबकी पूजाके समय लड़कीको ज़रूर बुलाऊँगा, नहीं तो मैं—"

बड़ी कड़ी प्रतिज्ञा कर बैठे।

पंचमी या षष्ठीके रोज़ फिर चद्दरके छोरमें कुछ नोट बाँधकर रामसुन्दर चलनेकी तय्यारी करने लगे। पाँच सालका एक पोता आकर कहने लगा—"बाबा, मेरे लिये गाड़ी खरीदने जा रहे हो ?" बहुत दिनोंसे उसे ठेला-गाड़ीपर चढ़कर हवा खानेका शौक हुआ है, पर किसी भी तरह वह पूरा नहीं हो रहा है। छः वर्षकी एक पोतीने आकर रोते-रोते कहा—"पूजाके न्यौतेमें जानेके लिये मेरे पास एक भी अच्छी धोती नहीं है।"

रामसुन्दर जानते थे, और उस बारेमें तमाकू पीते हुए बहुत-कुछ सोच भी रहे थे। रायबहादुरके घरसे जब पूजाका न्योता आयेगा,

तब उनकी बहुओंको क्या इसी तरह मामूली गहने पहनकर कृपापात्र दरिद्रकी तरह जाना होगा ? इस बातका स्मरण करके उन्होंने बहुतसी लम्बी साँसें ली हैं, परन्तु उससे उनके ललाटकी रेखाएँ गहरी खिंच जानेके सिवा और कोई फल नहीं हुआ।

दरिद्रतासे पीड़ित अपने घरकी क्रन्दनध्वनि कानोंमें भरकर वृद्धने समधीके घर प्रवेश किया। आज उनमें वह संकोचका भाव न था; दरवान और नौकरोंके मुँहकी ओर पहलेकी वह सलज्ज दृष्टि दूर हो गई है, जैसे अपने घरमें घुसे हों। भीतर जाकर सुना, रायबहादुर घरमें हैं नहीं, कुछ देर बैठना पड़ेगा। रामसुन्दर मनकी उमंगको न रोक सके, लड़कीसे भेंट की। मारे आनन्दके दोनों आँखोंसे टप-टप आँसू गिरने लगे। बाप भी रोने लगे, लड़की भी रोने लगी; दोनोंमेंसे किसीके मुँहसे बात न निकली। इसी तरह कुछ समय बीता। फिर रामसुन्दरने कहा—"अबकी तुझे लिवा ले चलूँगा, बिटिया! अब कोई गड़बड़ नहीं है।"

इतनेमें रामसुन्दरका बड़ा लड़का हरमोहन अपने दोनों छोटे बच्चोंको साथ लेकर सहसा घरमें आ घुसा। पितासे बोला—"बाबूजी, तो अब हम लोगोंको क्या रास्तेका भिखारी बनना पड़ेगा ?"

रामसुन्दर सहसा क्रोधमें आकर बोल उठे—"तुम लोगोंके लिये क्या मैं नरकगामी बनूँ ? मुझे तुम लोग अपने सत्यका पालन न करने दोगे ?"

रामसुन्दरने मकान बेच डाला है। लड़कोंको मालूम न पड़ जाय, इसके लिये उन्होंने काफ़ी इन्तज़ाम किया था; परन्तु फिर भी

उन्हें मालूम पड़ गया, यह जानकर लड़कोंपर उन्हें बड़ा गुस्सा आया और झुँझलाहट पैदा हो गई।

उनका पोता उनके दोनों घुटनोंको जोरसे पकड़कर मुँह उठाकर कहने लगा—"बाबा, मेरी गाड़ी ?—"

रामसुन्दर सिर झुकाये खड़े रहे, कोई उत्तर न पाकर बालक निरुपमाके पास दौड़ा गया, बोला—"बुआ री, मुझे एक गाड़ी ले देगी ?"

निरुपमा सब समझ गई, बोली—"बाबूजी, अगर तुम एक पैसा भी मेरे ससुरको दोगे, तो फिर तुम अपनी लड़कीको न देख पाओगे,—यह तुम्हारी देह छूकर कहती हूं।"

रामसुन्दरने कहा—"छिः, बेटी! ऐसी बात नहीं कहते!—अगर मैं रुपया न दे सका, तो इसमें तेरे बाप ही की बेइज्ज़ती है, और तेरा भी अपमान है!"

निरुपमाने कहा—"अपमान तो रुपया देनेमें है! तुम्हारी लड़कीकी क्या कोई इज्ज़त नहीं ? मैं क्या सिर्फ एक रुपयेकी थैली हूं, जब तक रुपया है, तभी तक मेरी क़ीमत है ? नहीं, बाबूजी, रुपये देकर तुम मेरा अपमान मत करो। और फिर तुम्हारे जमाई भी तो रुपये नहीं चाहते।"

रामसुन्दरने कहा—"तो फिर तुझे ये विदा नहीं करेंगे, बिटिया।"

निरुपमा बोली—"न करें तो तुम क्या करोगे, बताओ! तुम फिर विदा कराने न आना।"

रामसुन्दर काँपते हुए हाथोंसे नोट बँधे दुपट्टेको कंधेपर डालकर फिर चोरकी तरह सबकी निगाह बचाकर घर लौट गये।

परन्तु, रामसुन्दर रुपये लेकर आये थे और लड़कीके मना कर देनेसे बिना दिये ही चले गये, यह बात छिपी न रही। किसी नटखट चलती-पुर्ज़ी दासीने दरवाज़ेसे कान लगाकर ये बातें सुन लीं और उसने आकर साससे कह दिया। सुनकर सास मारे गुस्सेके आपेसे बाहर हो गईं।

निरुपमाके लिये उसकी ससुराल शर-शय्या हो उठी। एक तो उसके पति विवाहके थोड़े दिन बाद ही डिप्टी-मजिस्ट्रेट होकर परदेस चले गये हैं; दूसरे, कहीं संसर्ग-दोषसे ओछापन न आ जाय, इस ख़्यालसे अब मायके-वालोंसे उसका मिलना भी बन्द कर दिया गया है।

इसी बीचमें निरुपमा बहुत सख़्त बीमार पड़ गई, पर इसके लिये उसकी सासको सम्पूर्ण दोषो नहीं ठहराया जा सकता। अपने शरीरकी तरफ़से वह बड़ी लापरवाह हो गई थी। कातिकके महीनेमें, जब कि काफी ओस पड़ती थी, सारी रात वह सिरहानेका दरवाज़ा खोलकर सोती और रात-भर उघारी पड़ी रहती थी। खाने-पीनेका भी कोई ठीक न था। दासियाँ कभी-कभी कलेवा लाना भूल जातीं, तो वह अपने मुँहसे उन्हें याद भी न दिलाती थी। उसके मनमें यह बात तह तक बैठ गई थी कि वह इस घरकी दास-दासी है—मालिक-मालिकिनकी कृपापर ज़िन्दगी बसर कर रही है। परन्तु यह भाव भी साससे सहा न जाता था। अगर खाने-पीनेमें बहूकी कोई लापरवाही देखतीं,

तो झट कह बैठतीं—"नवाबकी बेटी हैं न ! गरीबके घरका खाना क्यों रुचने लगा !" कभी कहतीं—"देखो ज़रा, शकल तो देखो कैसी हो रही है ; दिनों दिन जैसे जली लकड़ी हो रही हो !"

बीमारी जब बहुत बढ़ गई, तब सास बोलीं—"अरे, उसके सब नख़रे हैं।" अन्तको एक दिन निरुपमाने साससे बड़े विनयके साथ कहा—"बाबूजीको और भइयोंको एक बार दिखा दो, माजी !" सास बोलीं—"बस, सब मायके जानेके बहाने हैं।"

कहनेसे कोई विश्वास न करेगा,—जिस दिन सन्ध्याके समय निरुपमाकी साँस चलने लगी, उसी दिन पहले-पहल उसे डाक्टरने देखा, और वही दिन उसकी चिकित्साका अन्तिम दिन हुआ।

घरकी बड़ी बहू मरी है, खूब धूमधामके साथ अन्त्येष्टिक्रिया की गई ! प्रतिमा-विसर्जनके समारोहके सम्बन्धमें जैसे राय-चौधरीकी लोक-प्रसिद्ध प्रतिष्ठा है, बड़ी बहूके अग्नि-सत्कारके विषयमें राय बहादुरकी भी वैसी ही प्रसिद्धि हो गई,—ऐसी चन्दनकी लकड़ियोंकी चिता आज तक किसीने देखी ही न थी ! फिर श्राद्ध भी ऐसी तय्यारियोंके साथ हुआ कि जो राय बहादुरके घर ही सम्भव था। सुनते हैं, इसमें वे कुछ क़र्ज़दार भी हो गये थे।

रामसुन्दरको तसल्ली देते वक्त, लोग, उनकी लड़कीका कैसी धूमधामके साथ दाह हुआ था, इसी बातकी तारीफ़के पुल बांधने लगते हैं।

इधर डिप्टी-मजिस्ट्रेटकी चिट्ठी आई—"मैंने यहां सब इन्तज़ाम कर लिया है ; अब शीघ्र ही बहूको भेज दो।"

राय बहादुरकी महिषीने जवाब दिया—"बेटा, तुम्हारे लिये दूसरी एक लड़कीसे सम्बन्ध ठीक कर लिया गया है, इसलिये तुम जल्दी छुट्टी लेकर यहां चले आओ।"

अबकी बार बीस हज़ार रुपये नक़द मिले, और हाथों हाथ वसूल भी हो गये।

(वि० सं० १९४८) [पहली कहानी]

पोस्ट-मास्टर

काम शुरू करते ही पोस्ट-मास्टरको ओलापुर गाँवमें आना पड़ा। गाँव बहुत ही मामूली है। पास ही एक नीलकी कोठी है, कोठीके साहबने बड़ी कोशिशसे यहाँ नया पोस्ट-आफिस स्थापित कराया है।

हमारे पोस्ट-मास्टर ठहरे कलकत्तेके लड़के। पानीकी मछलीको किनारेपर डाल देनेसे उसकी जैसी हालत होती है, इस छोटेसे गाँवमें आकर पोस्ट-मास्टरकी भी वही दशा हुई। एक अँधेरी मढ़ैयामें उनका आफिस है, पास ही एक गंदा ताल है, और उसके चारों तरफ़ जंगल। कोठीमें जो गुमाश्ता वग़ैरह मुलाज़िम हैं, उन्हें फ़ुरसत ही नहीं कि किसीसे मिलें-जुलें, और फिर वे भले-आदमियोंसे मिलने-जुलनेके क़ाबिल भी नहीं हैं।

खासकर कलकत्तेके लड़के तो अच्छी तरह मिलना-जुलना जानते ही नहीं। अपरिचित स्थानमें जाकर या तो वे उद्धत हो जाते हैं, या गुमसुम बने रहते हैं। इसी वजहसे स्थानीय लोगोंसे पोस्ट-मास्टरका मेल-जोल न हो सका। इधर हाथमें काम-काज भी ज़्यादा नहीं,

जिसमें लगे रहें। कभी-कभी थोड़ी-बहुत कविता लिखनेकी कोशिश करते हैं। उसमें ऐसा भाव व्यक्त करते हैं कि मानो तमाम दिन तरु-पल्लवोंके कम्पन और आकाशके मेघोंको देखकर जीवन बड़े सुखसे बीता जा रहा है;—पर अन्तर्यामी ही जानते होंगे, अगर आरव्य-उपन्यासका कोई दैत्य आकर एक ही रातमें इन शाखा-पल्लव-समेत तमाम पेड़ोंको काटकर पक्की सड़क बना दे, और उसके दोनों तरफ़ पंक्तिवार बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ खड़ी होकर आकाशके मेघोंको दृष्टिके ओमल कर दें, तो बेचारे इस अध-मरे भले आदमीके लड़केको पुनश्च नव-जीवन मिल जाय।

पोस्ट-मास्टरकी तनख्वाह बहुत थोड़ी है। ख़ुद पकाकर खाना पड़ता है, और गाँवकी एक पितृ-मातृ-हीन अनाथा बालिका उनका काम-काज कर देती है,—उसे थोड़ा-बहुत खानेको मिल जाता है। लड़कीका नाम है रतन। उमर बारह-तेरह सालकी होगी। ब्याहकी कोई ख़ास उम्मेद नहीं मालूम होती।

सन्ध्याके समय जब गाँवके ग्वालघरोंसे घना धुआँ उठता, चारों तरफ़से झींगुर बोलने लगते—कुछ दूरपर गाँवके नशेबाज़ गवैयोंकी चौकड़ी ढोलक-मँजीरा बजाकर ऊँचे स्वरसे गाना शुरू कर देती—जब अँधेरी मढ़ैयामें अकेले बैठे हुए कविके हृदयमें भी पेड़ोंकी कँपकँपी देखकर मामूली हृत्कम्प उपस्थित होता,—तब घरके कोनेमें एक दिआ जलाकर पोस्ट-मास्टर पुकारते—"रतनी!" रतनी दरवाज़ेपर बैठी हुई इसी बुलाहटके लिए बाट देखती रहती, पर एक बार बुलानेपर भीतर न आती,—कहती—"क्या है बाबूजी, क्यों बुलाते हो?"

पोस्ट-मास्टर—"तू क्या कर रही है ?"

रतन—" अभी चूल्हा सुलगाने जाऊँगी—रसोईमें—"

पोस्ट-मास्टर—"रसोईका काम पीछे कर लेना—ज़रा हुक्का भर ला।"

कुछ ही देर बाद दोनों गाल फुलाकर चिलमपर फूँक मारती हुई रतनी घरमें आती। उसके हाथसे हुक्का लेकर पोस्ट-मास्टर झट पूछ बैठते—"अच्छा रतनी, तुझे अपनी माँकी याद है ?" इसकी बड़ी लम्बी कथा है; कुछ याद है, कुछ भूल गई है। माँसे उसका बाप उसे ज़्यादा प्यार करता था, बापकी तो थोड़ी-थोड़ी याद है। मेहनत-मजूरी करके बाप शामको घर आता था, उन्हींमें से कोई-कोई सन्ध्या उसके हृदयपर तसवीरकी तरह साफ़-साफ़ अंकित है। ये बातें सुनाते-सुनाते रतनी पोस्ट-मास्टरके पैरोंके पास ज़मीनपर बैठ जाती। उसे याद आती—उसके एक छोटा भाई था—बहुत दिनकी बात है, बरसातके दिनोंमें एक दिन छोटी तलैयाके किनारे दोनों भाई-बहन मिलकर पेड़की डालीकी बंसी बनाकर झूठमूठको मछली पकड़ना खेला करते थे—बहुतसी बड़ी-बड़ी घटनाओंमें से यही बात उसके मनमें अधिकतर उदित होती। ऐसे ही बात-चीत करते-करते कभी-कभी बहुत रात हो जाती, तब मारे आलसके पोस्ट-मास्टरको रसोई बनानेकी तबीयत न होती। सबेरेकी बासी साग-तरकारी बची रहती और रतनी जल्दीसे चूल्हा सुलगाकर दो-चार रोटी सेंक लाती—उसीसे रातको दोनोंका पेट भर जाता।

कोई-कोई दिन संझाको उस मढ़ैयाके कोनेमें आफ़िसकी चौकी

पर बैठकर पोस्ट-मास्टर भी अपने घरकी बात छेड़ते—छोटे भाइयोंकी, माँ और जीजीकी, प्रवासमें सूने घरमें बैठकर जिनके लिए हृदय व्यथित हो उठता, उनकी, बातें कहते। जो बातें हर घड़ी मनमें उठती रहतीं और जो नील-कोठीके गुमाश्तोंसे भी नहीं कही जा सकती थीं—वे ही बातें एक अशिक्षित, क्षुद्र बालिकासे कहते चले जाते, ज़रा भी हिचकिचाते न थे। आखिरको ऐसा हो गया कि बालिका बातचीत करते समय उनके घरवालोंका अम्मा, जीजी, भइया कहकर चिर-परिचितकी तरह उल्लेख करती। यहां तक कि उसने अपने छोटेसे हृदयपट पर उनकी काल्पनिक मूर्तियाँ भी चित्रित कर ली थीं।

एक दिन वर्षाऋतुके मेघ-मुक्त दोपहरको तप्त सुकोमल बयार चल रही थी; धूपसे भीगी घास और पेड़-पौधोंमें से एक प्रकारकी गन्ध निकल रही थी, मालूम होता था, मानो थकी हुई पृथ्वीकी गरम उसास शरीरपर आकर टकरा रही है, और न-जानें कहांकी एक जिद्दिन चिड़िया इस भरे दुपहरमें प्रकृतिके दरबारमें अपनी तमाम शिकायतें अत्यन्त करुण स्वरसे बार-बार पेश कर रही है। पोस्ट-मास्टरके हाथमें कोई काम न था—उस दिन वर्षासे धुले हुए चिकने कोमल तरु-पल्लवोंकी हिल्लोल, और पराजित वर्षाका भग्नावशिष्ट रौद्र-शुभ्र स्तूपाकार मेघस्तर सचमुच ही देखने लायक वस्तु थी। पोस्ट-मास्टर वही देख रहे थे और सोच रहे थे कि इस समय पासमें यदि कोई खास अपना आदमी होता—हृदयके साथ बिलकुल मिली हुई कोई स्नेह-पुत्तलि मानव-मूर्ति होती! धीरे-धीरे मालूम होने लगा कि वह चिड़िया उसी एक ही बातको बार-बार कह रही है और इस जन-हीन

तरुच्छाया-निमग्न मध्याह्नके पल्लव-मर्मरका अर्थ भी कुछ-कुछ वैसा ही है। कोई विश्वास नहीं करता, और जान भी नहीं पाता; परन्तु छोटेसे गाँवके मामूली तनख्वाहके सब-पोस्ट-मास्टरके मनमें इस गहरी गुमसुम दुपहरियामें, छुट्टीके दिन, ऐसा ही एक भाव उठा करता है।

पोस्ट-मास्टरने एक लम्बी साँस छोड़कर बुलाया—"रतनी!" रतनी उस समय अमरूदके पेड़के नीचे बैठी कच्चा अमरूद खा रही थी; मालिककी आवाज़ सुनकर तुरन्त दौड़ी आई—हाँफती हुई बोली—"बाबूजी, बुला रहे हो?" पोस्ट-मास्टरने कहा—"तुझे मैं थोड़ा-थोड़ा पढ़ना सिखाऊँगा।" इसके बाद दुपहर भर उसे "अ-आ" "इ-ई" सिखाते रहे। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें उसे युक्ताक्षर तक पढ़ा दिया।

सावनका महीना है, वर्षाका कोई अन्त नहीं। नहर, बम्बा, ताल, तलैया, नदी, नाले, सब पानीसे भर गये। रात-दिन मेढ़कोंकी टर्र-टर्र और वर्षाकी झमझम सुनाई पड़ती रहती है। गाँवकी सड़कपर चलना-फिरना क़रीब-क़रीब बन्द ही समझो—नावपर बैठकर हाट जाना पड़ता है।

एक दिन सवेरेसे ही खूब बादल छा रहे थे। पोस्ट-मास्टरकी छात्रा बहुत देरसे दरवाज़ेपर बैठी बाट जोह रही थी, पर और दिनकी तरह नियमित पुकार न सुननेके कारण अपनी पोथी लेकर धीरे-धीरे घरके भीतर पहुँची। देखा, पोस्ट-मास्टर अपनी खाटपर पड़े हुए हैं; यह सोचकर कि आराम कर रहे हैं, उसने धीरेसे बाहर निकल

जाना चाहा। सहसा सुनाई पड़ा—"रतनी !" झटपट पीछेको लौटकर बोली—"बाबूजी ! सो रहे थे ?" पोस्ट-मास्टरने करुणस्वरसे कहा—"तबीयत अच्छी नहीं मालूम देती—देख तो मेरे माथेपर हाथ रखकर।"

इस निहायत निःसंग प्रवासमें घनी-घनी वर्षासे रोग-पीड़ित शरीरको ज़रा सेवा पानेकी इच्छा होती है। तपते हुए माथे पर चूड़ियोंवाले कोमल हाथोंका स्पर्श याद आता है। इस घोर प्रवासमें रोगकी यन्त्रणामें स्नेहमयी नारी-रूपमें जननी और जीजी पासमें बैठी है, ऐसा सोचनेको जी चहता है। यहां भी प्रवासीकी मनकी अभिलाषा व्यर्थ न गई। बालिका रतन अब बालिका न रही। उसी क्षणमें उसने जननीका पद लिया, वैद्य बुला लाई, ठीक समयपर गोली खिला दी, सारी रात सिरहाने बैठी जगती रही, अपने-आप पथ्य बना दिया, और सौ-सौ बार पूछती रही—"बाबूजी, कुछ आराम मालूम पड़ता है ?"

पोस्ट-मास्टर दुर्बल शरीर लेकर रोग-शय्यासे उठे,—मनमें इरादा कर लिया, बस अब नहीं, यहांसे किसी भी तरह तबादला कराना है। स्थानीय अस्वास्थ्यका उल्लेख करके उसी समय कलकत्तेके अफसरोंको तबादलेके लिये अरज़ी लिखी।

रोगीकी सेवासे छुट्टी पाकर रतनी फिर दरवाज़ेके बाहर अपनी जगहपर जा बैठी। पर पहलेकी तरह अब उसे कोई बुलाता नहीं। बीच-बीचमें उझककर देखती है, पोस्ट-मास्टर अनमने होकर चौकीपर बैठे हैं या खाटपर सो रहे हैं। रतनी जब बुलाहटकी प्रतीक्षामें बैठी

रहती, वे तब अधीर चित्तसे अपनी अर्ज़ीके जवाबकी प्रतीक्षा करते रहते। बालिकाने दरवाज़ेपर बैठे-बैठे हज़ार बार अपना पुराना पाठ घोंकना शुरू किया। उसे डर था कि कहीं अचानक पुकार न हो, और तब वह युक्ताक्षरोंको भूल गई, तो? अन्तमें एक सप्ताहके बाद एक दिन शामको पुकार हुई। घबराहटके साथ रतनी भीतर गई, बोली—"बाबूजी, मुझे बुला रहे थे?"

पोस्ट-मास्टर—"रतनी, कल ही मैं चला जाऊँगा।"

रतनी—"कहां चले जाओगे, बाबूजी?"

पोस्ट-मास्टर—"घर जाऊँगा।"

रतनी—"फिर कब आओगे?"

पोस्ट-मास्टर—"अब नहीं आऊँगा।"

रतनीने फिर कोई बात न पूछी। पोस्ट-मास्टरने ख़ुद ही उससे कहा—"मैंने तबादलेके लिये अरज़ी दी थी, अरज़ी मंजूर नहीं हुई। इसीसे काम छोड़कर घर जाऊँगा।"

बहुत देर तक दोनों चुप रहे। एक कोनेमें दिआ टिमटिमा रहा था, और एक जगह मकानकी पुरानी छत चूकर एक मिट्टीके सरवेमें टपटप बरसातका पानी टपक रहा था।

कुछ देर बाद रतनी धीरेसे उठकर रसोई-घरमें रोटी बनाने चली गई। और दिनकी तरह उतनी फुरती नहीं थी। शायद बीच-बीचमें उसे बहुतसी चिन्ताएँ आ घेरती थीं। पोस्ट-मास्टर जब खाकर उठे, तो बालिका अचानक पूछ बैठी—"बाबूजी, मुझे अपने घर ले चलोगे?"

पोस्ट-मास्टरने हँसकर कहा—"सो कैसे हो सकता है ?"

उन्होंने, किन-किन कारणोंसे उसका जाना असम्भव है, यह बात बालिकाको न समझाई, न इसकी उन्हें कोई ज़रूरत ही मालूम पड़ी।

रातभर, सपनेमें और जागतेमें बालिकाके कानोंमें पोस्ट-मास्टरकी हास्यध्वनिका कण्ठस्वर गूंजने लगा—"सो कैसे हो सकता है ?"

सबेरे उठकर पोस्ट-मास्टरने देखा कि उनके नहानेके लिये पानी तैयार है ; कलकत्तेकी आदतके अनुसार वे रखे हुए पानीसे नहाते थे। किस वक्त वे जायँगे, यह बात किसी कारणसे बालिका पूछ न सकी थी ; कहीं तड़के ही न जरूरत पड़े, इस ख्यालसे रतनीने पौ-फटते ही नदीसे पानी लाकर रख दिया था। नहा चुकनेके बाद रतनीकी पुकार हुई। रतनीने चुपचाप घरके भीतर प्रवेश किया और आज्ञा पानेकी आशासे एक बार मालिकके मुँहकी ओर देखा। मालिकने कहा—"रतनी, मेरी जगहपर जो बाबू आयेंगे, उन्हें मैं कह जाऊँगा—वे तुझे मेरी ही तरह जतनसे रखेंगे ; मैं जा रहा हूं, इसके लिये तुझे चिन्ता करनेकी ज़रूरत नहीं।" ये बातें अत्यन्त स्नेह और दयार्द्र हृदयसे निकली थीं, इसमें सन्देह नहीं, पर नारीके हृदयको कौन समझे ? रतनीने अनेकों बार मालिकके अनेक तिरस्कार चुपचाप सह लिये हैं, पर आजकी ये मीठी बातें उससे न सही गईं। वह एकसाथ सिसक-सिसक कर रोने लगी, बोली—"नहीं नहीं, तुम किसीसे भी कुछ मत कहना, मैं नहीं रहना चाहती।"

पोस्ट-मास्टरने रतनीका ऐसा व्यवहार कभी न देखा था, इससे वे दंग रह गये।

नया पोस्ट-मास्टर आया। उसे सारा चार्ज समझाकर पुराने पोस्ट-मास्टर चलनेकी तैयारी करने लगे। चलते समय रतनीको बुलाकर कहा—"रतनी, तुझे मैं कभी भी कुछ दे नहीं सका हूं। आज जाते समय तुझे कुछ दिये जाता हूं, इससे तेरी कुछ दिनकी गुज़र चल जायगी।

राह-खर्चके लिए कुछ निकालकर, उन्हें जो भी कुछ तनख़्वाहके रुपये मिले थे, जेबसे निकालकर देने लगे। तब रतनीने धूलमें लोटकर उनके पैर पकड़कर कहा—"बाबूजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, पैरों पड़ती हूं, मुझे कुछ मत दीजिये; तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मेरे लिए किसीको भी कुछ सोच करनेकी ज़रूरत नहीं।"—इतना कहकर वह दौड़कर वहांसे भाग गई।

भूतपूर्व पोस्ट-मास्टर एक गहरी सांस लेकर हाथमें कार्पेटका बैग लटकाये, कंधेपर छतरी रक्खे, मज़दूरके सिरपर नीले और सफेद रंगकी लकीरोंसे रंगा हुआ टीनका बकस रखवाकर धीरे-धीरे घाटकी तरफ़ चल दिये।

जब नावपर चढ़े और नाव छूट गई—वर्षाके पानीसे दूर तक फैली हुई नदी जब पृथ्वीके आवेगसे निकले हुए आँसुओंकी तरह चारों ओर चमकने लगी, तब हृदयके अंदर वे एक गहरी वेदनाका अनुभव करने लगे—एक साधारण ग्राम्य बालिकाकी करुण मुखच्छवि मानो एक विश्वव्यापी बृहत् अव्यक्त मर्म-व्यथा प्रकट करने लगी। एक बार बड़ी इच्छा हुई कि 'लौट चलूँ, संसारकी गोदसे छिटकी हुई उस अनाथिनीको साथ लेता चलूँ'—पर तब पालमेंहवा भर चुकी थी,

वर्षाका स्रोत वेगसे चल रहा था, गाँव पारकर नदीके किनारेकी श्मशान-भूमि दिखाई दे रही थी ;—और नदीके प्रवाहमें बहते हुए पथिकके उदास हृदयमें इस तत्त्वका उदय हो रहा था कि जीवनमें ऐसे कितने विच्छेद—कितनी मृत्यु होंगी, लौटनेसे फायदा ? संसारमें कौन किसका है ?

परन्तु रतनीके मनमें किसी भी तत्त्वका उदय नहीं हुआ। वह उस पोस्ट-आफिसके चारों तरफ़ सिर्फ आँसू बहाती हुई घूम रही थी। शायद उसके मनमें क्षीण आशा जाग रही थी कि 'शायद बाबूजी लौट आवें',—उसी बन्धनमें पड़कर बेचारी कहीं दूर नहीं जा सकती थी। हाय ! बुद्धिहीन मानव-हृदय ! तेरी भ्रान्ति किसी तरह मिटती ही नहीं ! युक्तिशास्त्रका विधान बहुत देरसे माथेमें घुसता है, प्रबल प्रमाणका भी विश्वास न कर मिथ्या आशाको दोनों भुजाओंसे बाँधकर जी-जानसे छातीसे लगाता है ; आख़िर एक दिन तमाम नाड़ियोंको काटकर हृदयका ख़ून चूसकर वह भाग जाती है, तब होश आता है और फिर दूसरे भ्रान्ति-जालमें पड़नेके लिए चित्त व्याकुल हो उठता है।

(वि० सं० १९४८)

बहूजी

वज़ीफ़ेके दर्जेसे दो-तीन दर्जे नीचे हमारे पण्डित थे शिवनाथ। उनकी डाढ़ी-मूछोंपर उस्तरा फिरा हुआ था, सिरके बाल छँटे हुए और चोटी छोटी थी। उन्हें देखते ही लड़कोंके प्राण सूख जाते थे।

प्राणियोंमें अक्सर यह बात देखनेमें आती है कि जिनके डंक हैं, उनके दाँत नहीं होते। पर हमारे पण्डितजीमें दोनों बातें एक ही साथ मौजूद थीं। एक ओर थप्पड़-घूँसे—पौधोंके बगीचेमें ओलेकी तरह—बरसते, तो दूसरी ओर कठोर वचनोंसे जान निकल जाती थी।

पण्डितजीको इस बातका अफसोस था कि पहले ज़मानेकी तरह गुरु-शिष्यका सम्बन्ध अब नहीं रहा; विद्यार्थी अब देवताके समान गुरुकी भक्ति नहीं करते; यह कहकर अपनी उपेक्षित देव-महिमाको बालकोंके सिरपर जोरोंसे पटक दिया करते, और कभी-कभी गहरा हुंकारा भरते; परन्तु उसके भीतर इतनी ओछी बातें मिली रहतीं कि उसे देवताके वज्रनादका रूपान्तर समझ लेनेमें किसीको भ्रम नहीं हो सकता।

कुछ भी हो, हमारे स्कूलके इस तीसरे दर्जेके दूसरे विभागके देवताको इन्द्र, चन्द्र, वरुण अथवा कार्तिक कोई न समझता था ; सिर्फ एक ही देवताके साथ उनको समानता हो सकती थी, जिनका कि नाम यम है ; और इतने दिनों बाद अब तो यह माननेमें कोई दोष नहीं और न भय है कि हमलोग मन-ही-मन चाहते थे कि उक्त देवालयको प्रस्थान करनेमें अब वे ज़्यादा विलम्ब न करें तो अच्छा है।

परन्तु इतना तो अच्छी तरह समझ चुके थे कि नर-देवताके समान दूसरी बला नहीं। सुरलोक-वासी देवता उपद्रव नहीं करते। पेड़से एक फूल तोड़कर चढ़ानेसे ख़ुश हो जाते हैं, नहीं दो तो तगादा नहीं करते। हमारे नर-देवता बहुत अधिककी आशा रखते हैं, और हमसे ज़रा भी त्रुटि हो गई, तो लाल-लाल आँखें निकालकर मारने दौड़ते हैं ; उस समय वे किसी भी तरफ़से देवता जैसे नहीं दिखाई देते।

लड़कोंको तकलीफ़ देनेके लिये हमारे शिवनाथ पण्डितके पास एक अस्त्र था, जो सुननेमें मामूली, पर वास्तवमें बहुत भयानक था। वे लड़कोंके नये-नये नाम रखते थे। नाम यद्यपि शब्दके सिवा और कुछ नहीं, पर आदमी अपनेसे अपने नामको ज़्यादा चाहता है ; अपने नामकी प्रसिद्धिके लिये लोग क्या-क्या कष्ट नहीं सहा करते ? यहां तक कि नामकी रक्षाके लिये लोग मरनेमें भी नहीं हिचकिचाते।

ऐसे नाम-प्रिय मानवके नामको विकृत कर देना, उसकी जानसे भी प्यारी जगहपर चोट पहुंचाना है। और तो क्या, जिसका नाम भूतनाथ है, उसे अगर नलिनीकान्त कहा जाय, तो उसके लिये भी वह असह्य है।

इससे एक तत्त्वकी उपलब्धि होती है। वह यह कि मनुष्य वस्तुकी अपेक्षा अवस्तुको अधिक मूल्यवान् समझता है—सोनेकी अपेक्षा वाणीको, प्राणोंकी अपेक्षा मानको और अपनेसे अपने नामको बड़ा मानता है।

मानव-स्वभावके इन अन्तर्निहित गूढ़ नियमोंके वशीभूत हो पण्डितजीने जब शशिशेखरका नाम 'भेटकी'* रख दिया, तब वह बहुत दुःखित हुआ। ख़ासकर इसलिये उसकी मर्म-व्यथा और भी बढ़ गई कि उक्त नामकरणमें उसके चेहरेपर विशेष लक्ष्य दिया जाता है, फिर भी अत्यन्त शान्त भावसे, सब सहते हुए, उसे चुपचाप बैठा रहना पड़ा।

आशुतोषका नाम था 'बहूजी', पर उसके साथ थोड़ासा इतिहास लिपटा हुआ है।

आसू अपने दर्जेमें नितान्त सीधा-सादा और भोला लड़का था। किसीसे लड़ता-झगड़ता न था, बड़ा झेंपू था। शायद उमरमें वह सबसे छोटा था, सभी बातें सुनकर मुसकरा देता था; ख़ूब पढ़ता था। स्कूलके बहुतसे लड़के उसके साथ मित्रता करनेको उत्सुक थे, पर वह किसीके साथ खेलता न था। छुट्टी होते ही तुरत-फुरत घर चला जाता।

दौनेमें कुछ मिठाई और छोटी फूलकी घंटीमें पानी लेकर एक बजेके क़रीब घरकी महरी आया करती। आसूको इसके लिये बड़ी शर्म मालूम पड़ती; महरी किसी तरह लौट जाय तो मानो वह बच जाय। स्कूलके छात्रके अलावा वह और भी कुछ है, इस बातको

* 'भेटकी' एक तरहकी मछली होती है, जिसका मुंह बहुत ही भद्दा—चपटा, पिचका-हुआ-सा—होता है। बंगालियोंमें अकसर लोग भद्दे चेहरेवालेको 'भेटकी' कह दिया करते हैं।
—अनुवादक।

लड़कोंमें प्रकट करनेके लिये वह बिलकुल ही तयार न था। वह घरका कोई है, अपने बाप-माँका लड़का है, भाई-बहनोंका भाई है, यह उसके लिये बहुत ही छिपानेकी बात थी, इस बातकी वह बड़ी कोशिश रखता कि कोई लड़का यह जान न ले।

पढ़ने-लिखनेमें उसको कोई त्रुटि न होती थी, सिर्फ किसी-किसी रोज़ स्कूल आनेमें ज़रा देर हो जाया करती थी, और शिवनाथ पण्डित उसका कारण पूछते, तो वह उसका कोई सदुत्तर न दे सकता था। इसलिये कभी-कभी उसे बड़ी फटकार सहनी पड़ती थी। पण्डितजी उसे घुटनोंपर हाथ रखकर पीठ नीची करके दलानकी सीढ़ियोंपर खड़ा कर देते थे, और चारों दरजोंके लड़के उस झेंपू बालकको ऐसी हालतमें देखा करते थे।

एक दिन ग्रहणकी छुट्टी थी। उसके दूसरे दिन स्कूलमें चौकीपर बैठे हुए पण्डितजीने देखा—एक सिलेट और स्याही लगे हुए बस्तामें पढ़नेकी किताबें लपेटे हुए—और दिनकी अपेक्षा बहुत संकुचित भावसे—आसू क्लासमें घुस रहा है।

शिवनाथ पण्डितने सूखी हँसी हँसकर कहा—“अच्छा, बहूजी आ गईं क्या!”

पढ़ाई खतम होनेपर छुट्टीसे पहले उन्होंने सब लड़कोंको सम्बोधन करके कहा—“सुनो रे, सब कोई सुनो!”

पृथ्वीकी सारी मध्याकर्षण-शक्ति जोरोंसे बालकको नीचेकी ओर खींचने लगी; परन्तु छोटासा आसू अपनी बेञ्चपर से धोतीका एक छोर और दोनों पैर लटकाकर सब लड़कोंका लक्ष्यस्थल (निशाना)

बनकर बैठा रहा। अब तक तो आसूकी काफ़ी उम्र हुई होगी और उसके जीवनमें बहुतसे भारी-भारी सुख-दुःख-लज्जाके दिन आये होंगे, इसमें सन्देह नहीं ; परन्तु उस दिनके बालक-हृदयके इतिहासके साथ किसी दिनकी तुलना नहीं हो सकती।

लेकिन बात बहुत छोटीसी है, और दो शब्दोंमें ख़त्म हो जाती है।

आसूकी एक छोटी बहन है ; उसकी बराबरकी कोई साथिन या बहन न थी, इसलिये आसूके साथ ही वह खेला करती थी।

लोहेकी रेलिंगसे घिरा हुआ गेट-वाला आसूका मकान है, सामने गाड़ी ठहरनेके लिये दालान है। उस दिन खूब वर्षा हो रही थी। जूता हाथमें लिये, सिरपर छतरी ताने जो दो-चार आदमी सामनेसे जा रहे थे, उन्हें किसी भी ओर ताकनेकी फ़ुरसत न थी। उस मेघके अन्धकारमें, वर्षाके झमझम-झमझम शब्दमें, तमाम दिनकी छुट्टीमें दालानकी सीढ़ियोंपर बैठा आसू अपनी बहनके साथ खेल रहा था।

उस दिन उनके गुड्डा-गुड़ियोंका ब्याह था। उसीकी तैयारीके बारेमें आसू अत्यन्त गम्भीरताके साथ अपनी बहनको उपदेश दे रहा था।

अब तर्क उठा कि पुरोहित किसे बनाया जाय ? बालिका चटसे दौड़ी गई और एक आदमीसे पूछने लगी—"क्यों जी, तुम हम लोगोंके पुरोहितजी बनोगे ?"

आसूने पीछेको मुँह फेरकर देखा, शिवनाथ पण्डित अपनी भीगी छतरी समेटे पानीसे भीगे हुए बरामदेमें खड़े हैं। रास्तेसे जा रहे थे, बारिश ज़्यादा होनेसे वहाँ ठहर गये। बालिका उन्हें पुरोहित बननेके लिये आग्रह कर रही है।

पण्डितजीको देखते ही आसू अपने खेल और बहनको, सब-कुछ छोड़-छाड़ कर एक दौड़में मकानके अन्दर दाखिल हो गया। उसका छुट्टीका दिन बिलकुल ही मिट्टीमें मिल गया।

दूसरे दिन शिवनाथ पण्डितने जब सूखी हँसीके साथ भूमिकाके रूपमें इस घटनाका उल्लेख कर आसूका नाम 'बहूजी' रख दिया, तब पहले वह जैसे सभी बातोंमें मुसकरा देता था, वैसे ही मुसकराकर उसने चारों तरफ़की हँसीमें शामिल होनेकी कोशिश की; इतनेमें घंटा बज गया, सब क्लासोंके लड़के बाहर चले गये; और दौनेमें थोड़ीसी मिठाई और चमकती हुई फूलकी घंटीमें पानी लिये महरी आकर दरवाज़ेपर खड़ी हो गई।

उस समय हँसते-हँसते उसका मुँह और कान सुर्ख़ हो उठे, व्यथित ललाटकी नसें फूल उठीं, और वेगसे निकलते हुए आँसू रोके न रुक सके।

शिवनाथ पण्डित बैठकमें जलपान करके निश्चिन्त मनसे हुक्का पीने लगे,—लड़के बड़े आनन्दसे आसूको घेरकर 'बहूजी' 'बहूजी' कहकर हल्ला मचाने लगे। छुट्टीके दिनका छोटी बहनके साथ खेला हुआ वह खेल, आसूकी दृष्टिमें अपने जीवनका एक सबसे अधिक लज्जाजनक भ्रम मालूम होने लगा; उसे विश्वास न हुआ कि दुनियाके आदमी कभी भी उस दिनकी बातको भूल जायँगे।

(वि० सं० १९४८)

रामकन्हाईकी मूर्खता

जो यह कहते हैं कि गुरुचरणके मरते समय उनकी दूसरी स्त्री अन्तःपुरमें बैठकर ताश खेल रही थीं, वे विश्व-निन्दक हैं—राईका पहाड़ बना देते हैं। असलमें बहूजी तब एक पैरकी पालती पर बैठकर दूसरे पैरका घुटना ठोड़ीसे लगाये, कच्ची इमली, हरी मिर्च और मछलीकी चरपरी भुजियासे खूब मन लगाकर बासा भात खा रही थीं। बाहरसे जब पुकार पड़ी, तो चबाये हुए डंठल और जूठी पत्तलको फेंककर मुँह गम्भीर बनाकर बोलीं—"ए राम, बासे भातके दो गस्से पेटमें डाल लूं, इतनी भी छुट्टी नहीं।"

इधर जब डाक्टरने जवाब दे दिया, तो गुरुचरणके भाई रामकन्हाईने रोगीके पास बैठकर धीरेसे कहा—"दद्दा, अगर तुम्हारी 'विल' (वसीयत) करनेकी तबीयत हो, तो बताओ।" गुरुचरणने बहुत ही धीमे स्वरमें कहा—"मैं कहता जाता हूं, तुम लिख लो।" रामकन्हाई कागज़ और दावात-कलम लेकर बैठ गये। गुरुचरण कहने लगे—"मेरी स्थावर और जंगम तमाम सम्पत्ति मैंने अपनी धर्मपत्नी श्रीमती वरदासुन्दरीको दी।" रामकन्हाईने लिखा तो सही,

पर लिखते हुए उनकी कलम न चलती थी। उन्हें बड़ी आशा थी कि उनका इकलौता बेटा नवद्वीप ही अपने पुत्रहीन ताऊजीकी तमाम जायदादका उत्तराधिकारी होगा। यद्यपि दोनों भाई अलहदा थे, तो भी इसी आशासे नवद्वीपकी माँने नवद्वीपको किसी भी तरह नौकरी नहीं करने दी,—ज़ल्दीसे उसका ब्याह कर दिया था, और वह ब्याह निष्फल भी नहीं हुआ। परन्तु फिर भी रामकन्हाईने लिखा और दस्तखत करानेके लिए कलम भइयाके हाथमें दी। गुरुचरणने निर्जीव हाथसे जो दस्तखत किये, वह काँपती हुई टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें थीं या दस्तखत, समझना कठिन था।

बासा भात खाकर जब श्रीमतीजी उस कमरेमें आईं, तब गुरुचरणकी ज़बान बन्द हो चुकी थी, वह रोने लगीं, जो बहुत आशा करके भी जायदादसे वंचित रह गये, वे कहने लगे—"दिखावटी रोना है।" परन्तु यह बात विश्वास-योग्य नहीं।

वसीयतनामेका हाल सुनते ही नवद्वीपकी माँ दौड़ी, और शोर मचा दिया,—बोली—"मरते वक्त बुद्धि बिगड़ जाती है। ऐसे सुन्दर भतीजेके रहते—"

रामकन्हाई यद्यपि स्त्रीके प्रति अत्यन्त श्रद्धा करते थे—इतनी ज़्यादा कि उसे भाषान्तरमें 'भय' भी कहा जा सकता है—पर उनसे भी रहा न गया, वे लपकके आगे बढ़े और बोले—"अरी, तेरी बुद्धि तो नहीं बिगड़ी है, फिर तू क्यों ऐसा करती है? दद्दा चले गये, पर मैं तो हूं, तुझे जो कुछ कहना हो, किसी मौक़ेसे मुझसे कह लेना, अभी मौक़ा नहीं है।—"

नवद्वीपको यह खबर लगी, वह भी आ पहुँचा, पर तब तक ताऊजी परलोक सिधार चुके थे। नवद्वीपने मृत व्यक्तिको धमकी देकर कहा—"देख लूँगा, मुखाग्नि कौन करेगा,—और श्राद्ध-शान्ति अगर करूँ, तो मेरा नाम नवद्वीप नहीं।" गुरुचरण कुछ भी न मानते थे। वह डफ़ साहबके छात्र थे। शास्त्रके अनुसार जो चीज सबसे ज़्यादा अभक्ष्य होती, उसीके खानेमें उन्हें विशेष तृप्ति होती थी। लोग अगर उन्हें क्रिश्चियन कहते, तो वह दाँतों तले जीभ दबाकर कहते—"राम राम, मैं अगर क्रिश्चियन होऊं, तो गऊका मांस खाऊं!" जीवित दशामें जिसकी यह हालत थी, वह मरनेके बाद तुर्त ही पिण्ड-नाशकी आशङ्कासे ज़रा भी विचलित होगा, यह सम्भव नहीं; परन्तु मौजूदा हालतमें बदला लेनेका इसके सिवा और कोई चारा ही न था। नवद्वीपको एक सहारा मिल गया, यह कि परलोकमें जाकर ताऊजी अवश्य ही भूखों मरेंगे। जब तक इस लोकमें बने हैं, ताऊजीकी जायदाद न मिलनेपर भी, किसी तरह पेट तो भर जाता है, पर ताऊजी जिस लोकमें गये हैं, वहां भीख मांगकर भी पिण्ड नहीं मिलता। यहां ज़िन्दा रहनेमें भी बहुतसे लाभ हैं।

रामकन्हाईने वरदासुन्दरीके पास जाकर कहा—"भाभीजी, भइया तुम्हें ही सब-कुछ दे गये हैं। यह लो उनका वसीयतनामा। लोहेके सन्दूकमें हिफ़ाजतसे रख देना।"

विधवा उस समय लम्बे-लम्बे पद रचकर ऊंचे स्वरसे विलाप कर रही थी, दो-चार दासियां भी उसके स्वरमें स्वर मिलाकर बीच-बीचमें दो-चार नये शब्द जोड़कर शोक-सङ्गीतसे सारे गाँवकी

निद्रा दूर कर रही थीं। बीचमें इस कागज़के टुकड़ेने आकर कम-से-कम तान तो तोड़ ही दी, और भावोंका भी पूर्वापर सम्बन्ध टूट गया। मामलेने अब इस प्रकार असंलग्न रूप धारण किया—

"हाय, मेरी अम्मा री! हाय, मेरी तक़दीर फूट गई री-ई! अरी मेरी अम्मा री! हाय,—हाय,—देवरजी, यह लिखावट किसकी है? तुम्हारी है?—हाय, हाय, ऐसे जतनसे अब कौन रखेगा, मेरी ओर अब मुँह उठाकर कौन देखेगा, हाय! अरी मेरी अम्मा री-ई! अरे ज़रा ठहहा जा, ज़्यादा चिल्लावे मत, बात सुन लेने दे। अरी, मेरी महतारी री, मैं भी क्यों नहीं मर गई री-ई!—मैं क्यों जिन्दी रही री-ई!" रामकन्हाईने मन-ही-मन गहरी साँस लेकर कहा—"यह हम लोगोंकी तकदीरका दोष है।"

घर जाकर नवद्वीपकी माँ रामकन्हाईके सिर हो ली। लदी हुई गाड़ी समेत दलदलमें फँसकर अभागे बैल जैसे गाड़ीवानके हज़ारों डंडे खाकर भी देर तक बेबसीसे चुपचाप खड़े रहते हैं, रामकन्हाई भी उसी तरह देर तक चुपचाप सब सहते रहे,—आखिरकार धीमे स्वरमें बोले—"मेरा क्या कसूर है! मैं तो दद्दा नहीं था!"

नवद्वीपकी माँ फुसकारकर बोलीं—"नहीं, तुम बड़े भले आदमी हो, तुम कुछ नहीं जानते; दद्दाने कहा, 'लिखो', भाई वैसे ही लिखते गये। तुम सब एक-से हो! तुम भी वक्तपर ऐसी ही बुद्धिमानी करोगे, मुझे मालूम है। मेरे मरते ही किसी मुँहजली डाइनको घरमें ले आओगे—और मेरे नन्हेसे नवद्वीपको गहरे पानीमें बहा दोगे! पर इसके लिए फिकर मत करो, मैं जल्दी नहीं मरनेकी।"

इस प्रकार रामकन्हाईके भावी अत्याचारोंकी आलोचना करके मालिकिन उत्तरोत्तर ज़्यादा गरम होने लगीं। रामकन्हाई निश्चित जानते थे कि अगर इन उत्कट काल्पनिक आशंकाओंके निवारणके लिए वे ज़रा भी जीभ हिलावें, तो उलटा नतीजा होगा। इस डरसे वे अपराधीकी तरह चुप बने रहे,—मानो उनसे वे दोष बन ही गये हों। मानो वे नन्हेंसे नवद्वीपको कुछ न देकर अपनी भावी पत्नीके नाम तमाम जायदादका वसीयतनामा लिखकर मर ही चुके हों। बिना इस अपराधको मंजूर किये कोई चारा ही नहीं।

इतनेमें नवद्वीप अपने बुद्धिमान मित्रोंसे खूब सलाह-मशविरा करके घर आया और माँसे बोला—"माँ, कोई चिन्ता नहीं। यह जायदाद मुझे ही मिलेगी। कुछ दिनके लिए बाबूको यहाँसे कहीं रवाना कर देना चाहिए। वे रहेंगे, तो सब गुड़ गोबर हो जायगा।" नवद्वीपके बापकी बुद्धिपर नवद्वीपकी माँको तनिक भी श्रद्धा न थी; इसलिए यह बात उन्हें भी युक्ति-संगत मालूम पड़ी। आखिरको माँकी झकझक या ताड़नासे यह बिलकुल अनावश्यक, सब काम चौपट करनेवाला निर्बोध बाप किसी बहानेसे कुछ दिनके लिए काशी चला गया।

थोड़े ही दिनोंमें वरदासुन्दरी और नवद्वीपचन्द्र दोनों एक दूसरे पर जाली 'विल' (वसीयतनामा) बनानेका मुक़दमा दायर करके अदालतमें पहुँचे। नवद्वीपने अपने नामका जो वसीयतनामा निकाला है, उसके दस्तखत देखनेसे साफ मालूम पड़ता है कि वे गुरुचरणके ही हैं। इसके दो-एक गवाह भी हैं। वरदासुन्दरीकी तरफ़ नवद्वीपके पिता ही एकमात्र गवाह हैं, और दस्तखतको तो कोई समझ

ही नहीं सकता। उसका एक भाई है, जो उन्हींके घर रहता है ; उसने कहा—"जीजी, तू कुछ सोच मत कर। मैं गवाही दूंगा,—और भी गवाह जुटाऊंगा।"

मामला जब पूरी तरहसे पेंचीदा हो चुका, तो नवद्वीपकी माँने नवद्वीपके बापको काशीसे चले आनेको लिख भेजा। बेचारा आज्ञाकारी भला मानस बैग और छाता हाथमें लिए यथासमय हाज़िर हुआ। कुछ रसालाप करनेकी भी कोशिश की—हाथ जोड़कर हँसते हुए बोले—"गुलाम हाज़िर है, महारानी साहिबाका क्या हुक्म हैं, फरमावें।"

घर-मालिकिनने सिर हिलाकर कहा—"बस, रहने दो, देख ली, अब ज़्यादा रसिकता मत करो। इतने दिन काशीमें बिता आये, कभी एक दिनके लिए याद भी की ?" इत्यादि।

इसी तरह दोनों ओरसे बहुत देर तक एक दूसरेपर प्यारका दोषारोपण होता रहा,—अन्तमें वह व्यक्तिको छोड़कर जातिपर आ पड़ा,—नवद्वीपकी माँने पुरुषोंके प्रेमकी मुसलमानोंके मुर्गी-वात्सल्यसे तुलना की। नवद्वीपके बापने कहा—"स्त्रियोंके मुँहपर मधु रहता है, हृदयमें छुरी।" परन्तु यह बतलाना कठिन है कि इस मौखिक मधुरताका परिचय नवद्वीपके बापको कब मिला।

इसी बीचमें रामकन्हाईको अकस्मात् अदालतसे एक गवाहीका सफीना मिला। बेचारेके हाथ-पाँव ढीले पड़ गये। रामकन्हाई सफीना पढ़कर उसका मतलब समझनेकी कोशिश कर रहे थे, इतनेमें नवद्वीपकी माँने आकर रोना शुरू कर दिया। कहने लगीं—"आग-दई

डंकिनी मेरे लालको सिर्फ ताऊकी जायदादसे कोरा रखना चाहती हो, सो नहीं, वह तो उसे जेल भिजवानेकी तैयारी कर रही है।"

अन्त तक धीरे-धीरे सब बातें समझकर रामकन्हाई दंग रह गये। झुंझलाकर ज़ोरसे बोल उठे—"अरे, तुम लोगोंने यह क्या सत्यानास कर डाला!" मालिकिनने भी क्रमशः अपना स्वरूप प्रकट किया, बोलीं—"क्यों, इसमें नवद्वीपका क्या दोष हो गया? वह अपने ताऊकी जायदाद न लेगा! यों ही बात-की-बातमें छोड़ देगा।"

एक बाहरकी छोकड़ी, पतिकी आयु हड़पनेवाली, डायन आकर घरकी मालिकिन बन बैठे, और घरका लड़का चुपचाप उसे देखता रहे? कौन ऐसा सत्कुलप्रदीप कनकचन्द्र वंशधर होगा, जो यह अनाचार सह ले? मान लो, मरते समय और डंकिनीके मन्त्र फूँकते रहनेसे अगर किसी मूढ़मति ताऊकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाय, तो क्या बुद्धिमान भतीजा उसे अपने हाथसे नहीं सुधार लेता है? इसमें कौनसा अन्याय हुआ!

हतबुद्धि रामकन्हाईने जब देखा कि उनके स्त्री-पुत्र दोनों मिलकर कभी तर्जन-गर्जन, कभी अश्रु-विसर्जन करने लगे, तब तक़दीर ठोंककर चुपचाप बैठ गये—अन्न-जल छोड़ दिया।

इस तरह दो दिन चुपचाप बिना कुछ खाये-पीये बीत गये। मुक़दमेका दिन आया। इसी बीचमें नवद्वीपने वरदासुन्दरीके ममेरे भाईको डर दिखाकर ऐसा वशमें कर लिया कि उसने सहज ही नवद्वीपकी तरफ गवाही दी। जयश्री जब वरदासुन्दरीको त्यागकर दूसरी ओर जानेकी तैयारी कर रही थी, तब रामकन्हाईकी पुकार हुई।

दो दिनसे खाना-पीना छोड़ देनेसे वृद्ध रामकन्हाईकी बड़ी बुरी हालत थी, ओठ सूख गये थे, ज़बान सूखकर तालूसे लग गई थी। अधमरे वृद्ध रामकन्हाईने अपनी काँपती हुई शिथिल उँगलियोंसे गवाहके कठघरेको जोरसे दाबकर पकड़ लिया। चतुर बैरिस्टर बड़े कौशलसे पेटकी बात निकालनेके लिए जिरह करने लगे—बहुत दूरसे शुरू करके बड़ी सावधानी और अत्यन्त धीर वक्रगतिसे प्रसंगके पास पहुँचनेकी कोशिश करने लगे।

तब रामकन्हाईने जजकी ओर देखते हुए हाथ जोड़कर कहा—"हुजूर, मैं बूढ़ा हूं, बहुत कमज़ोर हूं। ज़्यादा बोलनेकी मुझमें दम नहीं है। मुझे जो कहना है, संक्षेपमें कहे देता हूं। मेरे भाई साहब स्वर्गीय गुरुचरण चक्रवर्ती मरते समय अपनी सारी जायदाद अपनी धर्मपत्नी श्रीमती वरदासुन्दरीको दे गये हैं। वसीयतनामा मैंने अपने हाथसे लिखा था और भाई साहबने उसपर दस्तखत किये थे। मेरे पुत्र नवद्वीपचन्द्रने जो वसीयतनामा दिखाया है, वह झूठा है।" इतना कहकर रामकन्हाई काँपने लगे और तुरंत ही मूर्छित हो गये।

चतुर बैरिस्टरने बड़ी शेखीसे बगलमें बैठे हुए अटर्नीसे कहा—"वाह जोवू! देखा, जिरहमें कैसा कसकर फँसाया था!"

ममेरा भाई जीजीके पास दौड़ा गया, बोला—"बुड्ढेने तो सब मट्टी कर दिया था, मेरी गवाहीसे मुक़दमा सम्हल गया।"

जीजीने कहा—"अच्छा! आदमीको कौन पहचान सकता है? मैं तो बुड्ढेको भला आदमी जानती थी।"

जेल गये हुए नवद्वीपके बुद्धिमान मित्रोंने खूब विचार कर निश्चय

किया कि अवश्य ही बुड्ढेने इनका ऐसी गवाही दे डाली है। कठघरे पर जाकर बुड्ढा बुद्धिको ठीक नहीं रख सका। ऐसा ठोस बेवकूफ़ सारे शहरमें ढूढे न मिलेगा।

घर लौटकर रामकन्हाईको ज़ोरोंका सन्निपात ज्वर चढ़ा। बादमें पुत्रका नाम लेते-लेते बेचारा निर्बोध सर्वकार्य-विध्वंसकारी, नवद्वीपका अनावश्यक बाप संसारमें सदाके लिए विदा हो गया। घरवालों में से किसी-किसीने कहा—"और कुछ दिन पहले चला जाता तो अच्छा था।"—परन्तु जिस-जिसने यह बात कही थी, उनका नाम लेना नहीं चाहता।

(वि० सं० १९४८)



व्यवधान

नाता मिलाकर देखा जाय तो वनमाली और हिमांशुमाली दोनों ममेरे फुफेरे भाई हैं, सो भी बहुत हिसाब लगानेपर। परन्तु इनदोनोंका कुटुम्ब बहुत दिनोंसे पड़ोसी रहा है; बीचमें सिर्फ एक बगीचेका व्यवधान है, इसीलिए इनका नाता बहुत निकट न होनेपर भी घनिष्टता काफ़ी है।

वनमाली हिमांशुसे बड़ा है। हिमांशुके जब दाँत नहीं निकले थे और वह बोल भी नहीं सकता था, तब वनमालीने गोदमें लेकर इसी बगीचेमें उसे सुबह-शाम हवा खिलाई है, खेल सिखाया है, रोना बन्द कराया है, दोदो-दोदो करके मीठी नींद सुलाया है, और बच्चोंको बहलानेके लिए परिणत-बुद्धि प्रौढ़ व्यक्तियोंको—ज़ोरसे सिर हिलाना, अंटसंट बोलना, आदि—जो भी कुछ वयसानुचित चपलता और उत्कट उद्यम करना पड़ता है, उसमें भी वनमालीने कोई बात उठा न रखी थी।

वनमाली विशेष पढ़ा-लिखा नहीं है। उसे बगीचेका शौक था, और था इस दूरके नातेके छोटे भाईपर प्रेम। वह उसे एक दुर्लभ और अमूल्य लताकी तरह अपने हृदयका स्नेह सींचकर पाल रहा था। और जब वह उसके तमाम अन्तर-बाहरको आच्छन्न करके खूब फलने-फूलने लगी, तब वनमाली अपनेको धन्य समझने लगा।

यह बात अक्सर देखनेमें नहीं आती ; परन्तु कोई कोई स्वभाव ऐसा होता है, जो एक छोटीसी कल्पना या एक छोटे बच्चे या एक अकृतज्ञ मित्रके लिए सहज ही में अपनेको सम्पूर्णतः विसर्जन कर देता है—इस विशाल पृथ्वीपर सिर्फ एक छोटेसे स्नेहके कारोबारमें जीवनका सारा मूलधन लगाकर निश्चिन्त हो जाता है। उसके बाद या तो वह ज़रासे मुनाफ़ेपर परम सन्तोषके साथ जीवन बिता देता है, या फिर सहसा किसी दिन प्रभातमें अपना घर-द्वार सब बेचकर कंगाल होकर रास्तेपर जा खड़ा होता है।

हिमांशुकी उम्र जब और थोड़ी बढ़ गई, तब, उम्र और नातेका काफ़ी तारतम्य होनेपर भी, वनमालीका उसके साथ मानो मित्रताका बन्धन स्थापित हो गया। दोनोंमें मानो छोटे-बड़ेका कोई भेद ही न रहा।

ऐसा होनेका कुछ कारण भी था। हिमांशु पढ़ता-लिखता था और उसकी ज्ञानस्पृहा स्वभावतः बहुत तेज थी। पुस्तक पाते ही पढ़ने बैठ जाता, इससे फालतू पुस्तकें भी बहुतसी पढ़ी गईं, परन्तु कैसे भी हो, चारों तरफ़से उसके मनने एक पूर्णता प्राप्त कर ली थी। वनमाली विशेष श्रद्धाके साथ उसकी बात सुनता था, उससे सलाह लेता था, उसके साथ छोटी-बड़ी सब बातोंकी आलोचना करता था, किसी भी विषयमें बालक समझकर उसकी अवज्ञा नहीं करता था। हृदयके प्रथम स्नेह-रससे जिसे पाल-पोसकर आदमी बनाया गया है, उमरपर वही यदि अपनी बुद्धि, ज्ञान और उन्नत-स्वभावके लिए श्रद्धाका अधिकारी बन जाय, तो उसके समान ऐसी परम प्रिय वस्तु संसारमें और दूसरी नहीं मिल सकती।

बगीचेका शौक हिमांशुको भी था। परन्तु इस विषयमें दोनों मित्रोंमें कुछ भेद था। वनमालीको था हृदयका शौक, और हिमांशुको बुद्धिका। पृथ्वीतलके ये कोमल पौधे और लताएं, यह अचेतन जीवन-राशि, जो यत्नकी तनिक भी लालसा नहीं रखती और फिर भी यत्न पानेपर घरके बाल-बच्चोंकी तरह बढ़ती रहती है, जो आदमीके बाल-बच्चोंसे भी बढ़कर बच्चे हैं, उनको यत्नसे पाल-पोसकर बड़ा बनानेके लिए वनमालीमें एक स्वाभाविक प्रवृत्ति थी। परन्तु हिमांशुमें पेड़-पौधोंके प्रति एक कौतूहल दृष्टि थी। अंकुर निकल आये, कल्ला फूटने लगे, बौर लग गये, फूल खिलने लगे, इन सब बातोंमें उसका खूब मन लगता था।

बीज बोने, कलम लगाने, खाद देने, मचान बांधने आदि विषयोंमें हिमांशुको नई-नई बातें सूझतीं और वनमाली उन्हें बड़े आनन्दके साथ सुनता। इस बगीचेके लिए आकृति-प्रकृतिके जितने प्रकार भी संयोग-वियोगके हो सकते हैं, दोनों मिलकर सब करते।

दरवाज़ेके सामने बगीचेके बीचमें एक पक्की वेदी-सी बनी थी। चार बजते ही वनमाली एक महीन कुरता पहनकर, चुना हुआ दुपट्टा कंधेपर डालकर, हाथमें नलीदार हुक्का लिये वहां छायामें जाकर बैठ जाता। कोई मित्र-दोस्त भी नहीं थे और न हाथमें कोई पुस्तक या अख़बार। बैठा-बैठा हुक्का पीता, और तिरछी निगाहसे, उदासीन भावसे कभी दायें और कभी बायें देखा करता। इसी प्रकार उसका समय हुक्केके धुएँकी तरह धीरे-धीरे बहुत ही हलका होकर उड़

जाता, टूट जाता, शून्यमें विला जाता, कहीं भी उसका कोई चिह्न न रह जाता।

अन्तमें जब हिमांशु स्कूलसे लौटकर कलेवा करके हाथ-मुँह धोकर दिखाई देता, तब वह झटपट हुक्केकी नली छोड़कर उठ बैठता। तब उसके आग्रहको देखकर सहज ही समझमें आ जाता कि वह अब तक किसके लिए बैठा-बैठा धीरजके साथ इन्तज़ार कर रहा था।

उसके बाद दोनों जने बगीचेमें बातें करते हुए टहलते। अन्धकार हो आनेपर दोनों बेञ्चपर बैठ जाते—दक्षिणकी हवा पेड़के पत्तोंको हिलाती हुई बही चली जाती, किसी-किसी दिन हवा चलती भी न थी, पेड़-पौधे तसवीरकी तरह निश्चल खड़े रहते, सिरपर आकाश-भरमें तारे चमकते रहते।

हिमांशु बातें करता, वनमाली चुपचाप सुनता रहता। जो बात समझमें न आती, वह भी उसे अच्छी लगती; जो बातें और किसीके मुँहसे बहुत ही बुरी और रूखी मालूम दे सकती थीं, वे ही बातें हिमांशुके मुंहसे बड़े मजेकी लगतीं। ऐसे श्रद्धावान् प्रौढ़ श्रोताके मिल जानेसे हिमांशुकी वक्तृता-शक्ति, स्मृति-शक्ति और कल्पना-शक्तिको विशेष लाभ होता। वह कुछ पढ़कर कहता, कुछ सोचकर कहता और कुछ उपस्थित-बुद्धिसे जो आती सो कह डालता; और कभी-कभी कल्पनाकी सहायतासे अपने ज्ञानकी कमीको ढक लेता। वह बहुतसी ठीक बातें कहता, बहुतसी गलत भी कह डालता, पर वनमाली सबको गंभीरतासे सुनता,

बीच-बीचमें दो-एक शब्द वह भी कहता, हिमांशु उसका प्रतिवाद करके जो समझा देता वही समझ लेता, और उसके दूसरे दिन छायामें बैठकर हुक्का पीता हुआ उन बातोंको बहुत देर तक विस्मयके साथ सोचता रहता।

इतनेमें एक झगड़ा उठ खड़ा हुआ। वनमाली और हिमांशुके मकानके बीचमें एक पानीका नाला है। उस नालेमें एक जगह एक नीबूका पेड़ पैदा हो गया है, उस पेड़पर जब फल लगते हैं, तो वनमालीका नौकर उन्हें तोड़नेकी कोशिश करता है, और हिमांशुका नौकर उसे रोकता है; और इस बारेमें दोनों ओरसे गाली-गलौजकी जो वर्षा होती है, उसमें यदि ज़रा भी तत्त्व होता, तो शायद तमाम नाला भर जाता।

नतीजा यह हुआ कि वनमालीके पिता हरचन्द्र और हिमांशुके पिता गोकुलचन्द्रमें इसी बातको लेकर तकरार हो गई। दोनों फ़रीक़ नालेके अधिकारका निर्णय करानेके लिए अदालत पहुंचे।

वकील-बैरिस्टरोंमें जितने भी महारथी थे, सभीने दोनोंमें से किसी-न-किसीका पक्ष लेकर वाक्-युद्ध शुरू कर दिया। दोनों ओरसे इतने रुपये खर्च हुए कि सावन-भादोंकी वर्षामें उस नालेसे उतना पानी भी कभी न बहा होगा।

अन्तमें हरचन्द्रकी जीत हुई; साबित हो गया कि नाला उन्हींका है, और नीबूके पेड़पर किसीका भी हक नहीं है। अपील हुई, परन्तु नाला और नीबूका पेड़ हरचन्द्रका ही रहा!

जितने दिन मुक़दमा चलता रहा, दोनों भाइयोंकी मित्रतामें कोई फर्क न आया। इस आशंकासे कि शायद कहीं झगड़ेकी छाया उन्हें

छू न ले, वनमाली दूनी घनिष्टतासे हिमांशुको हृदयके पास बाँध रखनेकी कोशिश करने लगा, और हिमांशुने भी तनिक भी विमुखता नहीं प्रकट की।

जिस दिन अदालतसे हरचन्द्रकी जीत हुई, उस दिन घरमें, खासकर अन्तःपुरमें खुशियाँ मनाई जाने लगीं; सिर्फ वनमालीकी आँखोंमें नींद नहीं रही। उसके दूसरे दिन क़रीब चार बजे वह उदास चेहरा लेकर उसी बगीचेकी वेदीपर जा बैठा, मानो पृथ्वीपर और किसीके भी कुछ नहीं हुआ, सिर्फ उसीकी बड़ी-भारी हार हुई है।

उस दिन सूरज डूब गया, छः बज गये, पर हिमांशु नहीं आया। वनमालीने एक गहरा उसास लेकर हिमांशुके मकानकी ओर देखा। खुले जंगलेमें से देखा, अरगनीपर हिमांशुके स्कूलके कपड़े लटक रहे हैं; बहुतसे चिरपरिचित लक्षणोंसे जान लिया—हिमांशु घर ही में है। हुक्काकी नली फेंककर उदास मुँह लिये टहलने लगा, और हजार बार उसी जंगलेकी तरफ़ देखा, पर हिमांशु बगीचेमें नहीं आया।

शामकी बत्ती जलनेपर वनमाली धीरे-धीरे हिमांशुके घर गया।

गोकुलचन्द्र दरवाज़ेपर बैठे हुए गरम देहपर हवा लगा रहे थे। उन्होंने कहा—"कौन है?"

वनमाली चौंक पड़ा। मानो वह चोरी करने आया हो, और पकड़ा गया हो।

काँपती हुई ज़बानसे बोला—"मैं हूँ, मामाजी!"

मामाने कहा—"किसे ढूँढ़ने आये हो? घरपर कोई नहीं है।"

वनमाली फिर बगीचेको लौट आया और चुपचाप बैठ गया।

जितनी रात बीतने लगी, उसने देखा कि हिमांशुके मकानके जंगले एक-एक करके सब बंद हो गये ; दरवाज़ेकी सँधमेंसे जो उजेला चमक रहा था, वह भी क्रमशः बुझ गया। अँधेरी रातमें वनमालीको ऐसा मालूम हुआ कि हिमांशुके घरके सारे दरवाज़े उसीके लिए बंद हो गये हैं, सिर्फ़ वही अकेला बाहरके अन्धकारमें पड़ा रहा।

दूसरे दिन फिर बगीचेमें आकर बैठ गया; सोचने लगा, आज शायद आवे तो आ सकता है। जो बहुत दिनोंसे रोज़ आया करता था, वह एक दिनके लिये भी न आयेगा, यह बात वह किसी भी तरह न सोच सका। कभी भी उसने यह नहीं सोचा था कि यह बन्धन किसी भी तरह टूट जायगा; इतना निश्चिन्त था कि उसे पता नहीं कि कब उसके जीवनके सारे सुख-दुःख उस बन्धनमें जकड़ गये। आज अकस्मात् मालूम हुआ कि वह बन्धन टूट गया है, पर एक ही मुहूर्तमें उसका यह सर्वनाश हुआ है, यह वह किसी भी तरह हृदयसे विश्वास नहीं कर सका।

प्रतिदिन नियमसे वह बगीचेमें बैठता है, शायद दैवयोगसे आ जाय ; परन्तु ऐसा दुर्भाग्य है कि जो नियमानुसार प्रतिदिन होता था, वह दैवसे एक दिन भी न हुआ।

रविवारके दिन सोचा, पहलेकी तरह आज भी हिमांशु सवेरे हमारे यहाँ खानेको आवेगा। दृढ़ विश्वास तो नहीं किया, पर फिर भी आशा न छोड़ सका। सब आये, पर वह नहीं आया।

तब वनमालीने कहा, "तो अब शायद खाकर ही आयेगा।" खाकर भी नहीं आया। वनमालीने सोचा, "शायद आज खा-पीकर

सो गया है, जगनेपर आयेगा।" कब जगा, सो तो नहीं मालूम, पर आया नहीं।

फिर वही शाम हुई, रात हो गई, हिमांशुके घरके दरवाज़े एक-एक करके सब बंद हो गये, एक-एक करके सब बत्ती भी बुझ गईं।

इस तरह सोमवारसे लेकर रविवार तक सप्ताहके सातों दिन उसकी तक़दीरने जब छीन लिये, आशाको आश्रय देनेके लिए हाथमें एक भी दिन जब बाकी नहीं बचा, तब हिमांशुके बंद मकानकी तरफ़ उसकी डबडबाती हुई व्यथित आँखोंने एक मर्मभेदी अभिमानकी फरियाद भेज दी, जीवनकी सारी वेदनाको सिर्फ़ एक ही आर्तस्वरमें भरकर उसने कहा—"हे दयामय!"

[वि० सं० १९४८]

ताराप्रसन्नकी करतूत

लेखक-जातिकी प्रकृतिके अनुसार ताराप्रसन्न ज़रा कुछ झेंपू और मुँह-छिपाऊ आदमी थे। लोगोंके सामने निकलनेमें उनका सिर चकराता था। घर बैठे कलम चलाते-चलाते उनकी दृष्टि घट गई, पीठ झुक गई, पर गिरस्तीका अनुभव अभी बहुत ही थोड़ा है। लौकिकताके बँधे हुए बोल स्वभावतः उन्हें आते न थे, इसलिए गृह-दुर्गसे बाहर वे अपनेको किसी भी तरह निरापद न समझते थे।

लोग भी उन्हें एक अजब ही चीज़ समझते थे, और इसमें उनका कोई दोष भी नहीं। मान लो, पहली मुलाकातमें किसी भलेमानसने उनसे बड़ी प्रसन्नतासे कहा—"आपके साथ मिलकर मुझे इतना आनन्द हुआ कि जिसका पार नहीं।"—ताराप्रसन्न चुपचाप बैठे बड़े ध्यानके साथ अपनी दाहनी हथेली देखने लगे। सहसा उस नीरवताका अर्थ ऐसा मालूम होता है, "हाँ, तुम्हें जो आनन्द हुआ, सो हो सकता है, पर मुझे आनन्द हुआ, यह झूठी बात मैं कैसे मुँहसे निकालूं, यही सोच रहा हूं।

मध्याह्न-भोजनके लिए निमंत्रण देकर लखपती घरका मालिक जब तीसरे पहर परोसना शुरू करता है—और बीच-बीचमें विनीत प्रार्थनाके साथ भोज्य पदार्थकी तुच्छताके विषयमें ताराप्रसन्नको सम्बोधन-पूर्वक कहता रहता है—"यह कुछ नहीं, कुछ नहीं ! बहुत मामूली है ! ग़रीबकी रूखी-सूखी है, विदुरका आयोजन है ! आपको सिर्फ़ तकलीफ देना है"—तब भी ताराप्रसन्न चुप ही बने रहते हैं ; मानो उनकी बात ऐसी प्रामाणिक है कि उसका उत्तर नहीं दिया जा सकता।

कभी-कभी ऐसा भी होता है—जब कोई भलामानस ताराप्रसन्नसे आकर कहता है कि उनके समान अथाह पाण्डित्य इस ज़मानेमें मिलना मुश्किल है, सरस्वती अपना पद्मासन त्यागकर उनके कण्ठाग्रमें निवास करती हैं, तब भी ताराप्रसन्न उसका ज़रा भी प्रतिवाद नहीं करते, मानो सचमुच ही सरस्वती उनका कण्ठ घेरकर बैठी हों। ताराप्रसन्नको यह जानना चाहिए कि मुँहपर जो प्रशंसा करते हैं, और दूसरोंके सामने जो आत्म-निन्दामें प्रवृत्त होते हैं, वे दूसरोंसे प्रतिवादकी प्रत्याशासे ही बहुत-कुछ असंकोच अत्युक्ति कर डालते हैं—दूसरा पक्ष यदि शुरूसे आखिर तक तमाम बातें यों ही सुनता रहे, तो वक्ता अपनेको प्रतारित समझकर अत्यन्त क्षुब्ध हो जाता है। ऐसी दशामें लोग अपनी बात झूठ साबित होनेपर भी दुःखित नहीं होते।

घरके आदमियोंके साथ ताराप्रसन्नका व्यवहार दूसरी तरहका है, और तो क्या, उनकी ख़ास स्त्री दाक्षायणी भी उनके साथ बातोंमें नहीं जीत पातीं। उन्हें बात-बातपर कहना पड़ता है—"रहने दो, रहने

दो ; मैं हारी, तुम जीते, बस ! मुझे अभी और भी काम करने हैं।" वाक्-युद्धमें स्त्रीको उसीके मुंहसे हार मनवा लें, ऐसी शक्ति और ऐसा सौभाग्य कितने पतियोंको प्राप्त है ?

ताराप्रसन्नके दिन बड़े मज़ेमें बीते जाते हैं। दाक्षायणीको यह दृढ़ विश्वास है कि विद्या-बुद्धि और क्षमतामें उनके पतिके बराबरीका कोई नहीं है, और इस बातको वे मुंह खोलकर कह भी डालती हैं,—सुनकर ताराप्रसन्न कहते—"तुम्हारे एकके सिवा दूसरा कोई पति ही नहीं है, तुलना करो तो किससे ?" इसपर दाक्षायणी बहुत गुस्सा हो जातीं।

दाक्षायणीको सिर्फ एक ही बातका अफ़सोस है, वह यह कि उनके पतिकी असाधारण शक्ति बाहर प्रकट नहीं होती,—न पतिको इस बारेमें कुछ दिलचस्पी ही है। ताराप्रसन्न जो लिखते हैं, उसे छपाते नहीं।

दाक्षायणी कभी-कभी अनुरोध करके पतिके मुँहसे उनके लेख सुना करतीं—जितना ही उनकी समझमें न आता, उतनी ही वे आश्चर्यमें पड़ जातीं। उन्होंने कृत्तिवासकी रामायण, काशीदासका महाभारत, कविकङ्कण-चण्डी पढ़ा है, और कथाएँ भी सुनी हैं। वह सब-कुछ पानीकी तरह सरलतासे समझमें आ जाता है—निरक्षर लोग भी आसानीसे समझ लेते हैं; परन्तु उनके पतिकी रचनाके समान ऐसी पूरी तरहसे न समझमें आनेवाली आश्चर्यकी चीज़ इससे पहले उन्होंने कहीं नहीं देखी या सुनी।

वे मन-ही-मन सोचतीं, यह पुस्तक जब छपकर निकलेगी और कोई भी उसका एक अक्षर न समझ सकेगा, तब देश-भरके लोग

आश्चर्यसे दंग रह जायँगे। उन्होंने हज़ारों बार पतिदेवसे कहा—"इन सबको छपा डालो!"

पति कहते—"पुस्तकके छपानेके विषयमें भगवान् मनु स्वयं कह गये हैं 'प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला'।"

ताराप्रसन्नके चार सन्तानें हैं, चारों ही कन्या। दाक्षायणी समझती थीं, यह गर्भधारिणीकी ही त्रुटि है। इसलिए वे अपनेको अपने प्रतिभा-सम्पन्न पतिके लिए अत्यन्त अयोग्य स्त्री समझती थीं। जो पति बात-की-बातमें ऐसे-ऐसे दुरूह ग्रन्थोंकी रचना कर डालता है, उसकी स्त्रीके गर्भसे सिवा कन्याके और सन्तान ही नहीं होती, स्त्रीके लिए इससे बढ़कर अयोग्यता और क्या हो सकती है!

पहलौटी लड़की जब पिताकी छाती तक बढ़ गई, तब ताराप्रसन्नकी निश्चिन्तता जाती रही। तब उन्हें होश आया कि एक-एक करके चारों लड़कियोंका ब्याह करना है, और उसके लिए बहुतसे रुपयोंकी ज़रूरत है। गृहिणीने अत्यन्त निश्चिन्ततासे कहा—"तुम अगर एक बार ज़रा मन लगा दो, तो फिर किसी बातकी चिन्ता ही न रहे।"

ताराप्रसन्न कुछ व्यग्रतासे पूछ उठे—"सचमुच! अच्छा, बताओ तो सही, क्या करना होगा?"

दाक्षायणीने संशय-रहित निरुद्विग्नभावसे उत्तर दिया—"कलकत्ते चलो—अपनी पुस्तकें छपाओ—लोग तुम्हें जान जायँ—फिर देखना, रुपये अपने-आप आते हैं या नहीं।"

स्त्रीकी तसल्लीसे ताराप्रसन्नको भी धीरे-धीरे तसल्ली होने लगी—और मनमें निश्चय हो गया कि घर बैठे-बैठे अब तक उन्होंने जितना

लिखा है, उससे उनकी बात तो क्या, उनके मुहल्ले-भरके लोगोंको कन्या-दायसे मुक्त किया जा सकता है।

अब कलकत्ते जाते समय बड़ी-भारी एक दिक्कत खड़ी हुई। दाक्षायणी अपने निरुपाय निःसहाय पतिको किसी भी तरह अकेला नहीं छोड़ सकतीं। वहां उन्हें खिला-पिलाकर और नित्य-नैमित्तिक कर्तव्योंकी याद दिलाकर गिरस्तीके विविध उपद्रवोंसे उनकी कौन रक्षा करेगा ?

परन्तु अनभिज्ञ पति भी अपरिचित परदेशमें स्त्री-कन्याओंको साथ ले जानेमें डरते हैं और राज़ी नहीं होते। अन्तमें दाक्षायणीने मुहल्लेके एक चतुर आदमीको पतिके नित्य अभ्यासके बारेमें हज़ारों उपदेश देकर अपने पदपर नियुक्त किया। और पतिको बहुत-बहुत सौगंद दिलाकर, बहुतसे तावीज-गंडे पहनाकर परदेशको रवाना कर दिया, और घरमें पछाड़ खाकर रोने लगीं।

कलकत्ते आकर ताराप्रसन्नने अपने चतुर साथीकी सहायतासे 'वेदान्त-प्रभाकर' प्रकाशित किया। दाक्षायणीके गहने गिरवी रखकर जो कुछ रुपये मिले थे, उनमेंसे अधिकांश खर्च हो गये।

बिक्रीके लिए किताबोंकी दुकानोंपर और समालोचनाके लिए देशके तमाम छोटे-बड़े सम्पादकोंके पास 'वेदान्त-प्रभाकर' भेजा गया। डाकसे स्त्रीको भी एक प्रति रजिस्टरी करके भेज दी; डर था कि कहीं बीच ही में डाकखाने वाले न उड़ा लें।

गृहिणीने जिस दिन छपी हुई किताबके ऊपरके पृष्ठपर छापेके हरूफोंमें अपने पतिका नाम देखा, उस दिन मुहल्लेकी तमाम

लड़कियोंको निमन्त्रण देकर खूब खिलाया। जहां सबके बैठनेका स्थान था, वहां किताब पड़ी रहने दी।

जब सब आकर बैठ गईं, तो ऊँचे स्वरमें बोलीं—"अरे, यह पुस्तक यहां किसने रख दी! अन्नदा, ज़रा उस किताबको उठा देना बहन, उठाकर रख दूँ।" इन लड़कियोंमें अन्नदा पढ़ना जानती है। पुस्तक उठाकर टीनके बकसपर रख दी।

कुछ देर बाद एक चीज़ उतारतेमें उसे हाथसे गिरा दी—फिर अपनी बड़ी लड़कीका नाम लेकर बोलीं—"शशी, बाबूजीकी पुस्तक पढ़ना चाहती है क्या? तो लेती क्यों नहीं, पढ़-पढ़! इसमें सरम काहेकी!" बाबूजीकी पुस्तक पढ़नेके लिए शशीको बिलकुल ही आग्रह न था।

फिर कुछ देर बाद उसे डाटकर कहने लगीं—"छिः, बेटी, बाबूजीकी किताब इस तरह बिगाड़ते नहीं, अपनी कमला जीजीके हाथमें दो, वह उस अलमारीके ऊपर रख देगी।"

किताबके यदि ज़रा भी कहीं चेतना होती, तो उस एक ही दिनके उत्पीड़नसे वेदान्तका प्राणान्त परिच्छेद हो जाता।

एक-एक करके सब समाचारपत्रोंमें समालोचना निकलने लगी। गृहिणीने जो सोचा था, वह बहुत अंशोंमें सत्य साबित होने लगा। ग्रन्थका एक भी अक्षर न समझमें आनेके कारण देश-भरके समालोचक बिलकुल विह्वल हो उठे। सभीने एकस्वरसे कहा—"ऐसा सारगर्भित ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नहीं हुआ।"

जो समालोचक रेनॉल्ड्सके 'लन्दन-रहस्य'के अनुवादके सिवा

और कोई पुस्तक छू नहीं सकते, उन्होंने बड़े उत्साहके साथ लिखा—"देशके ढेर-के-ढेर नाटक-उपन्यासोंके बदले यदि इस श्रेणीके दो-एक ग्रन्थ बीच-बीचमें निकलते रहें, तो हमारा साहित्य सचमुच ही पढ़ने योग्य हो जाय।"

जिस व्यक्तिने पुरुषानुक्रमसे वेदान्तका नाम कभी सुना नहीं था, उसीने सिर्फ़ यह लिखा—"लेखकके साथ सब स्थलोंपर हमारा मतैक्य नहीं है—स्थानाभावके कारण यहां उनका उल्लेख नहीं किया जा सका। परन्तु फिर भी मोटी तौरपर यह कहा जा सकता है कि ग्रन्थकारके साथ हमारे मतका बहुत जगह सामंजस्य पाया जाता है।" बात यदि सत्य होती, तो कम-से-कम ग्रन्थको जला देना उचित था।

देशमें जहां-कहीं जितनी भी लाइब्रेरी थीं और नहीं थीं, उन सबके मंत्रियोंने मुद्राके बदले मुद्राङ्कित पत्र भेजकर ताराप्रसन्नसे ग्रन्थकी भिक्षा चाही। बहुतोंने लिख भेजा—"आपके इस चिन्ताशील ग्रन्थसे देशका एक बड़ाभारी अभाव दूर हो गया है।" चिन्ताशील ग्रन्थ किसे कहते हैं, ताराप्रसन्न ठीक-ठीक न समझ सके, परन्तु फिर भी पुलकित चित्तसे गांठसे डाकखर्च देकर हरएक लाइब्रेरीको 'वेदान्त-प्रभाकर' भेज दिया।

इस तरह बेशुमार स्तुति-वाक्योंकी वर्षासे ताराप्रसन्न जब बहुत ही प्रफुल्लित हो रहे थे, ठीक उसी मौक़ेपर पत्र मिला कि दाक्षायणीके बहुत ज़ल्दी पाँचवीं सन्तान होनेकी सम्भावना है। तब कहीं वे रक्षकको साथ लेकर रुपये वसूल करनेके लिए दूकानोंपर पहुंचे।

सब दूकानदारोंने एक ही तरहका जवाब दिया—"एक भी किताब नहीं बिकी है।" सिर्फ़ एक जगह सुना कि बाहरसे किसी एक आदमीने किताब मंगाई थी और उसे वी० पी० भी भेजी गई थी, पर वह लौट आई, किसीने छुड़ाई ही नहीं। दूकानदारको अपनी गांठसे डाकखर्चका दण्ड देना पड़ा, इसलिए वह ग्रन्थकारपर बहुत ही खफ़ा हुआ और उसी समय किताब वापस करनेको तैयार हो गया।

ग्रन्थकार घर लौटकर बहुत-कुछ सोचते रहे, पर कुछ भी उनकी अक़्लमें न आया। अपने चिन्ताशील ग्रन्थके विषयमें जितनी ही अधिक चिन्ता करने लगे, उतने ही वे अधिकतर उद्विग्न होने लगे। अन्तमें जो कुछ रुपये शेष बचे थे, उसीके सहारे देशकी तरफ़ चल दिये।

ताराप्रसन्नने गृहिणीके पास आकर अत्यन्त आडम्बरके साथ प्रफुल्लता प्रकट की। दाक्षायणी शुभ-संवादके लिये हँसती हुई प्रतीक्षा करती रहीं।

ताराप्रसन्नने एक अंक 'गौड़वार्त्तावह'का लाकर गृहिणीकी गोदमें फेंक दिया। पढ़कर मन-ही-मन उन्होंने सम्पादकके तईं अक्षय धन और पुत्रकी कामना की; और उनके मुंहपर मानसिक पुष्प-चन्दनका अर्घ्य दिया। समालोचना पूरी पढ़ चुकनेके बाद फिर पतिकी तरफ़ देखने लगीं।

पतिने तब 'नवप्रभात' खोलकर रख दिया। पढ़कर आनन्दसे विह्वल दाक्षायणीने फिर पतिके मुंहपर प्रत्याशापूर्ण स्निग्ध दृष्टि डाली।

तब ताराप्रसन्नने 'युगान्तर' निकाला। उसके बाद? उसके बाद 'भारत-भाग्यचक्र'। उसके बाद? उसके बाद फिर 'शुभ जागरण', उसके बाद 'अरुणालोक', उसके बाद 'संवाद-तरङ्ग-भङ्ग', उसके बाद 'आशा', 'आगमनी', 'उछ्वास', 'पुष्पमञ्जरी', 'सहचरी', 'सीता-गजट', 'अहल्या लाइब्रेरी प्रकाशिका', 'ललित समाचार', 'कोतवाल', 'विश्व-विचारक', 'लावण्य लतिका'। हँसते-हँसते गृहिणीके आनन्दाश्रु झरने लगे।

आँखें पोंछकर फिर एक बार पतिके कीर्तिरश्मि-समुज्ज्वल मुखकी ओर देखा, पतिने कहा—"अभी और भी बहुतसे अखबार बाकी हैं।"

दाक्षायणीने कहा—"उन्हें शामको देखूँगी, अब और-और बातें सुनाओ, कैसे क्या हुआ?"

ताराप्रसन्न बोले—"अबकी बार कलकत्ते जाकर सुन आया हूं, लाट साहबकी मेमने एक किताब निकाली है, पर उसमें 'वेदान्त-प्रभाकर' का कोई उल्लेख नहीं किया है।"

दाक्षायणीने कहा—"अरे, इन सब बातोंको जाने दो—और क्या लाये, बताओ?"

ताराप्रसन्नने कहा—"कुछ चिट्ठियाँ भी हैं।"

तब फिर दाक्षायणीको साफ़-साफ़ कहना पड़ा—"रुपये कितने लाये?"

ताराप्रसन्नने उत्तर दिया—"विधुभूषणसे पांच रुपये उधार लेकर यहां आया हूं।"

अन्तमें दाक्षायणीने जब सारा वृत्तान्त सुना, तब संसारकी

साधुनाके विषयमें उनका तमाम विश्वास उलट गया। अवश्य ही दूकानदारोंने उनके पतिको ठग लिया है, और देश-भरके तमाम खरीददारोंने षड्यन्त्र करके दूकानदारोंको छकाया है।

अन्तमें सहसा याद आई कि जिसको अपना प्रतिनिधि बनाकर पतिके साथ भेजा था, उसी विधुभूषणने ही भीतर-ही-भीतर दूकानदारोंसे मिलकर ऐसा किया है—और जितना दिन चढ़ने लगा, उतना ही साफ समझमें आने लगा—उस मुहल्लेके विश्वम्भर चटर्जी उनके पतिके पूरे दुश्मन हैं, यह सब कार्रवाई उन्हींकी है। हाँ, ज़रूर, जिस दिन उनके पति कलकत्ते गये थे, उसके दो ही दिन बाद विश्वम्भरको उन्होंने बड़के नीचे खड़े-खड़े कन्हाई पालसे बतलाते देखा था—परन्तु कन्हाई पालके साथ अक्सर उनकी बातचीत हुआ करती थी, इससे उस समय सन्देह नहीं हुआ, अब तो सब साफ-साफ समझमें आ रहा है।

इधर दाक्षायणीको घर-गिरस्तीकी दुश्चिन्ता दिनों-दिन बढ़ने लगी। जब अर्थोपार्जनका ऐसा अच्छा और सुगम उपाय व्यर्थ हो गया, तो अपना कन्या-प्रसवका अपराध उन्हें चौगुना सताने लगा—जलाने लगा। विश्वम्भर, विधुभूषण या देशके अधिवासियोंको इस अपराधके लिये जिम्मेदार न कर सकीं—सारा अपराध एक अपने ही सिरपर लाद लिया—सिर्फ लड़कियाँ जो पैदा हुईं और होंगी, उन्हें भी ज़रा-ज़रा बाँट दिया। दिन और रात, एक घड़ीके लिये भी उनके मनमें शान्ति न रही।

ज्यों-ज्यों प्रसवका समय निकट आने लगा, त्यों त्यों दाक्षायणीकी

शरीरकी हालत बिगड़ने लगी ; सबको विशेष चिन्ता हुई। निरुपाय ताराप्रसन्न पागलकी तरह विश्वम्भरके पास दौड़े गये, बोले—"भाई साहब, मेरी इन पचास किताबोंको गिरवी रखकर अगर कुछ रुपये दे दो, तो मैं शहरसे अच्छी दाई बुलवाकर दिखा देखूँ।"

विश्वम्भरने कहा—"भाई, इसके लिये कोई फिकर नहीं, रुपया जो लगें सो मैं दूँगा, तुम इन किताबोंको ले जाओ।" इतना कहकर कन्हाई पालके साथ बहुत-कुछ कहा-सुनी करके कुछ रुपये कहींसे ले आया, और विधुभूषण स्वयं अपनी गांठसे राहखर्च देकर कलकत्तेसे धात्री ले आया।

दाक्षायणीने न-जाने क्या सोचकर पतिको कमरेमें बुलवा लिया और सरकी कसम देकर कहा—"जब कभी तुम्हें वह दर्द सतावे, तो स्वप्नलब्ध औषधि खाना न भूलना। और उस संन्यासीका दिया हुआ तावीज कभी न खोलना।" और भी बहुतसी छोटी-छोटी हज़ारों बातें पतिको समझाईं, और उनका हाथ पकड़कर उनसे सब मंजूर करा लीं। फिर बोलीं—"विधुभूषणका तनिक भी विश्वास नहीं, उसीने हमारा सर्वनाश किया है।" नहीं तो औषधि, तावीज और सरकी कसम-समेत अपने पतिको उसीके हाथ सौंप जातीं।

उसके बाद महादेवके समान अपने विश्वासप्रवण भोलानाथ पतिको संसारके निर्मल कुटिल-बुद्धि षड़यन्त्रकारियोंके विषयमें बार-बार सावधान कर दिया। अन्तमें चुपके-से बोलीं—"देखो, मेरे जो लड़की होगी, वह अगर ज़िन्दा रहे, तो उसका नाम रखना 'वेदान्त-प्रभा', उसके बाद फिर चाहे उसे प्रभा कहकर ही बुलाना, कोई हर्ज़ नहीं।"

इतना कहकर पतिके पैर छूए, पैरोंकी धूल माथेसे लगाई। मन-ही-मन कहने लगीं—"सिर्फ लड़कियां पैदा करनेके लिये ही पतिके घर आई थी। अबकी शायद उससे पिण्ड छूट जायगा।"

धात्रीने जब कहा—"माँजी, देखना ज़रा, लड़की कैसी सुन्दर हुई है।" माँने एक बार देखकर आँखें मीच लीं, बड़े कोमल स्वरसे कहा—"वेदान्तप्रभा!" इसके बाद फिर उन्हें इस लोकमें एक भी बात कहनेका अवसर न मिला!

[वि० सं० १९४८]

लल्लूका लौटना

पहला परिच्छेद

रायचरण जब पहले-पहल नौकरीपर आया था, तब उसकी उमर थी बारह बरसकी। जसोर जिलेमें उसका घर था। लम्बे-लम्बे बाल, बड़ी-बड़ी आँखें और श्याम-चिक्कण छरछरी देह थी। जातिका कायस्थ था। उसके मालिक भी कायस्थ थे। मालिकके घर एक बरसका एक बच्चा था, उसीको खिलाना डुलाना बहलाना उसका मुख्य कर्तव्य था।

धीरे-धीरे उस बच्चेने रायचरणकी गोद छोड़कर स्कूलमें, स्कूल छोड़कर कालेजमें और अन्तको कालेज छोड़कर मुन्सफीमें प्रवेश किया है। रायचरण अब भी उसका नौकर है।

उसका एक मालिक और बढ़ गया है; बहूजी आ गई हैं; इसलिये अनुकूल-बाबू पर रायचरणका पहले जितना अधिकार था, उसका अधिकांश नवीन गृहिणीके हाथ लग गया है।

परन्तु मालिकिनने जैसे रायचरणका पूर्वाधिकार कुछ घटा दिया है, वैसे ही एक नया अधिकार देकर उसकी बहुत-कुछ पूर्ति भी कर दी है। थोड़े ही दिन हुए, अनुकूलके एक लड़का पैदा हुआ है,—और रायचरणने उसे सिर्फ अपनी कोशिश और मेहनतसे खूब अपना लिया है।

उसने उसे ऐसे उत्साहके साथ झुलाना शुरू किया है, ऐसी निपुणताके साथ उसके दोनों हाथ पकड़कर ऊपरको उछालता है, उसके मुँहके पास जा-जाकर ऐसा सिर हिलाता रहता है, उत्तरकी कोई उम्मीद न रखकर ऐसे-ऐसे अर्थशून्य प्रश्न उससे करता रहता है कि वह नन्हाँ-सा आनुकौलव रायचरणको देखते ही मारे खुशीके फूल जाता है।

वह नन्हाँ-सा बच्चा जब पेटके बल—घुटनोंके बल—चल कर चौखट पार होता और कोई पकड़ने आता तो खिलखिलाकर हँसता हुआ जल्दीसे निरापद स्थानमें दुबकनेकी कोशिश करता, तब रायचरण उसकी असाधारण चतुरता और विचार-शक्ति देखकर आश्चर्यमें आ जाता। माँके पास जाकर बड़े गर्व और आश्चर्यके साथ कहता—"माँजी, तुम्हारा लड़का बड़ा होनेपर 'जज' होगा, पाँच हज़ार रुपये पाया करेगा।"

संसारमें और भी कोई मानव-सन्तान इस उमरमें चौखट पार करना आदि असम्भव-चातुर्यका परिचय दे सकती है, यह बात रायचरणके क़्यासके बाहर है, परन्तु सिर्फ भावी जजोंके लिये यह सब सम्भव है, उनके लिये यह कोई तअज्जुबकी बात नहीं।

आखिर बच्चेने जब डगमगाते हुए चलना शुरू किया, तो वह बड़े आश्चर्यकी बात हो गई, और जब माँको 'म्मा' बुआको 'उआ' और रायचरणको 'चन्ना' कहकर पुकारने लगा, तब रायचरण इस आश्चर्यजनक संवादको यत्र-तत्र घोषित करने लगा।

सबसे बड़ी तअज्जुबकी बात तो यह है कि माँको 'म्मा' कहता है, बुआसे 'उआ' कहता है, पर उसे कहता है 'चन्ना'! वास्तवमें बच्चेके मस्तिष्कमें यह बुद्धि कहाँसे आई, बतलाना कठिन है। अवश्य ही कोई ज्यादा उमरका आदमी ऐसी अलोक-सामान्यताका परिचय न दे सकता था, और देनेपर भी उसके जज-पदकी सम्भावनामें सबको पूरा-पूरा सन्देह उपस्थित होता।

कुछ दिन बाद मुँहमें रस्सी दबाकर रायचरणको घोड़ा बनना पड़ा। पहलवान बनकर उसे बच्चेके साथ कुश्ती लड़नी पड़ती थी—और पराजित होकर ज़मीनपर न गिर पड़े, तो बेचारेकी शामत आ जाती।

इसी समय अनुकूल-बाबूका पद्मा नदीके किनारे किसी जिलेमें तबादला हो गया। अनुकूल अपने बच्चेके लिये कलकत्तेसे एक छोटीसी ठेला-गाड़ी ले गये। साटनका कुरता और सिरपर जरीदार टोपी, हाथमें सोनेके कड़े और पैरोंमें लच्छे पहनाकर रायचरण नवकुमारको दोनों वक्त गाड़ीमें बिठाकर हवा खिलाने ले जाता।

वर्षाऋतु आई। क्षुधित पद्मा उद्यान, ग्राम, खेत, सबको एक-एक कौरमें मुँहमें ठूँसने लगी। टापूकी रेती पर के पेड़-पौधे सब पानीमें डूब गये। नदीके किनारेकी बाड़ धसकनेके भयावने शब्द और

पानीके गर्जनसे दसों दिशाएँ मुखरित हो उठीं। द्रुत-गतिसे दौड़ती हुई फेनराशिने नदीकी तीव्र गतिको और भी प्रत्यक्ष कर दिया।

तीसरे पहर बादल उमड़े थे, पर बरसनेकी कोई सम्भावना न थी। रायचरणका खामखयाली तनिक-सा मालिक किसी भी तरह घरमें नहीं रहना चाहता। गाड़ीपर सवार होकर अड़ गया। रायचरण धीरे-धीरे गाड़ीको ढकेलता हुआ खेतोंके पास नदी किनारे आ पहुंचा। नदीमें एक भी नाव न थी, खेतमें एक भी आदमी न था,—मेघके छिद्रोंमें से दिखाई दिया कि उस पार जन-शून्य बालुकामय नदी-किनारे शब्द-हीन दीप्त समारोहके साथ सूर्यास्तकी तैयारियां हो रही हैं। उस निस्तब्धताके बीचमें से बालक सहसा एक ओर उँगली दिखाकर बोल उठा—"चन्ना, फूः!"

पास ही सजल पङ्किल भूमिपर एक बृहत् कदम्बवृक्षकी ऊँची शाखापर कुछ फूल खिले हुए थे, उसी ओर बालककी लुब्ध दृष्टि आकृष्ट हुई थी। तीन-चार दिन हुए, रायचरणने सींकोंमें गूँथ-गूँथकर उसे एक कदम्बके फूलोंकी गाड़ी बना दी थी, उसमें रस्सी बांधकर खींचनेमें उसे ऐसा आनन्द आया कि उस रोज़ रायचरणको मुँहमें लगाम नहीं देनी पड़ी; घोड़ेसे वह एकाएक ही सईसके पदपर चढ़ा दिया गया।

कीच-कर्दममें से जाकर चन्नाको फूल लानेकी इच्छा न हुई, उसने चटसे दूसरी ओर उँगली दिखाकर कहा—"देख, देख, वो—ओ देख, चिरैया,—देख तो, उड़ गई—आहा! अइये री चिरैया, लल्लूको लड्डू दे जइये"—इस प्रकार लगातार विचित्र बातें करता हुआ वह ज़ोरोंसे गाड़ी चलाने लगा।

पर जो लड़का बड़ा होकर जज होगा, उसे इस तरह फुसलानेकी आशा करना व्यर्थ है—खासकर उस वक्त, जब कि चारों तरफ़ दृष्टि आकर्षण करनेवाली कोई चीज़ ही न हो। काल्पनिक चिरैयाका बहाना ज़्यादा देर तक नहीं ठहर सका।

रायचरणने कहा—"तो तुम गाड़ीमें बैठे रहना, भला, मैं चटसे फूल लिये आता हूं। ख़बरदार, पानीके किनारे न जाना!" यह कहता हुआ वह धोती ऊपर चढ़ाकर कदम्बवृक्षकी ओर चल दिया।

परन्तु वह जो पानीके किनारे जानेको मना कर गया, उससे बच्चेका मन कदम्बके फूलसे हटकर उसी क्षण पानीकी तरफ़ दौड़ गया। देखा, पानी कल-कल छल-छल करके दौड़ा जा रहा है; मानो बदमाशी करके किसी एक बृहत् रायचरणके हाथसे निकलकर एक लाख शिशु-प्रवाह हँसता हुआ कल-कल स्वरके साथ मना किये हुए स्थानकी तरफ़ तेज़ीसे भागा जा रहा हो।

उसके इस बुरे दृष्टान्तसे मानव-शिशुका चित्त चञ्चल हो उठा। गाड़ीसे धीरे-धीरे उतरकर वह पानीके पास पहुंचा। एक लम्बे तिनकेको उठाकर उसे मछली पकड़नेकी 'बंसी' बना पानीमें झुककर उससे मछली पकड़ने लगा। चंचल जलराशि अस्फुट कलकल-भाषामें बार-बार शिशुको अपने खेलमें शामिल होनेके लिये आह्वान करने लगी।

सहसा पानीमें किसी चीज़के गिरनेका शब्द हुआ, परन्तु बरसातमें पद्माके किनारे ऐसे कितने ही शब्द हुआ करते हैं। रायचरणने झोली भरकर कदम्ब-फूल तोड़े। पेड़से उतरकर

मुसकाता हुआ गाड़ीके पास पहुंचा, देखा तो वहां कोई नहीं ! चारों तरफ़ अच्छी तरह निगाह दौड़ाकर देखा, कहीं किसीका कोई चिह्न तक न दिखाई दिया।

क्षण-भरमें रायचरणका खून बर्फ़ बन गया। सारी दुनियाँ उसे मलिन उदास धुआंधार दीखने लगी। वह अपने टूटे हुए हृदयमेंसे चीत्कार कर उठा—"लल्लू—लल्लू !"

परन्तु 'चन्ना' कहकर किसीने उत्तर नहीं दिया, शरारत करके किसी बच्चेका कण्ठ हँस न उठा; सिर्फ पद्मा ही पहलेकी तरह कल-कल छल-छल करके दौड़ती रही, मानो वह कुछ जानती ही नहीं—मानो उसे दुनियाँकी इन ज़रा-ज़रासी बातोंपर ध्यान देनेका अवकाश ही नहीं !

सन्ध्या होनेपर उत्कण्ठित माताने चारों तरफ़ आदमी भेजे। लालटेन हाथमें लिये लोग नदीके किनारे पहुंचे, वहां देखा तो रायचरण आंधीकी हवाकी तरह खेतोंमें चारों तरफ़ "लल्लू—लल्लू" चिल्लाता हुआ भटक रहा है,—उसका गला बैठ गया था। अन्तमें घर लौटकर रायचरण धड़ामसे मांजीके पैरोंपर गिर पड़ा। उससे बहुत पूछा गया, वह रो-रोकर यही कहता रहा—"नहीं जानता, मां !"

यद्यपि सब समझ गये कि यह पद्माका ही काम है, फिर भी गांवके बाहर जो बंजारे ठहरे हुए हैं, उनपर सन्देह रह ही गया। माताके मनमें तो यह सन्देह पैदा हुआ कि कहीं रायचरणने ही न चुरा लिया हो, और तो क्या, उसे बुलाकर कहने लगीं—"तू मेरे लल्लूको लौटा दे—तू जितने रुपये मांगेगा, मैं दूँगी।"

सुनकर रायचरणने सिर्फ माथेपर हाथ दे मारा। मालिकिनने उसे निकाल बाहर किया।

अनुकूल बाबूने अपनी स्त्रीके मनसे रायचरणपर इस बेजा सन्देहको दूर करनेकी कोशिश की; उन्होंने पूछा—"रायचरण ऐसा जघन्य काम किस लिये करता?" गृहिणीने उत्तर दिया—"क्यों? क्या हुआ? वह सोनेके गहने पहने था।"

दूसरा परिच्छेद

रायचरण देश चला गया। अब तक उसके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था, होनेकी ऐसी कोई उम्मीद भी न थी। परन्तु दैववश, बरस बीतते-न-बीतते उसकी स्त्रीने ज़्यादा उमरमें एक पुत्र जनकर संसारसे ही कूच कर दिया। इस नवजात बालकपर रायचरणको बड़ा क्रोध आया—बैरी-सा दीखने लगा। उसने सोचा—यह छल करके छुन्नूके स्थानपर अधिकार करने आया है। सोचने लगा—मालिकके इकलौते बेटेको पानीमें बहाकर खुद पुत्र-सुखका उपभोग करना, मानो एक महापातक है। रायचरणकी विधवा बहन अगर न होती, तो यह बच्चा दुनियाँकी हवा अधिक दिन तक न ले सकता था।

आश्चर्यकी बात है कि इस लड़केने भी कुछ दिन बाद चौखट पार करना शुरू कर दिया, और सब तरहकी मनाहियोंको न माननेमें

चतुरता दिखाने लगा। और तो क्या, इसका कण्ठस्वर, हँसने और रोनेकी ध्वनि बहुत-कुछ उसी लल्लूसे मिलती-जुलती है। किसी-किसी दिन जब इसका रोना सुनता, तो रायचरणकी छाती सहसा धड़क उठती, मालूम होता कि वह उसका लल्लू ही कहीं भटक-भटककर रो रहा है।

फुल्ना—रायचरणकी बहनने इसका नाम रखा था फुल्ना—बुआको 'उआ' कहकर पुकारने लगा। उस परिचित सम्बोधनको सुनकर एक दिन सहसा रायचरणको ख़याल आया—तब तो लल्लू मेरे मोहको नहीं छोड़ सका है। वह तो मेरे ही घर आकर पैदा हुआ है।

इस विश्वासके अनुकूल कुछ अकाट्य युक्तियाँ भी थीं। पहले तो, उसके जानेके बाद शीघ्र ही उसका जन्म होना। दूसरे, इतने वर्ष बाद सहसा उसकी स्त्रीके गर्भसे लड़का पैदा होना, यह कदापि स्त्रीके गुणसे नहीं हो सकता। तीसरे, यह भी घुटनोंके बल चलता है, डगमगाता हुआ घूमता है और बुआको 'उआ' कहता है! जिन लक्षणोंके होनेसे भविष्यमें जज होनेकी सम्भावना है, उनमेंसे अधिकांश इसमें मौजूद हैं।

तब माँजीके उस हृदय-विदारक सन्देहकी बात उसे सहसा याद आ गई—आश्चर्यमें आकर मन-ही-मन कहने लगा—"हां-हां, माँके मनने ठीक जान लिया था, किसने उसके बच्चेको चुरा लिया है।"—फिर, इतने दिनों तक जो उसने बच्चेकी लापरवाही रखी, उसके लिये उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। बच्चेको वह ख़ूब चाहने लगा।

अबसे फुलनाको वह इस तरह पालने लगा, जैसे वह किसी बड़े घरानेका बच्चा हो। साटनका कोट खरीद दिया। जरीदार टोपी ले आया। मृत स्त्रीके गहने गलवाकर कड़े और लच्छे बनवा दिये। मुहल्लेके किसी भी लड़केके साथ उसे खेलने नहीं देता – रात-दिन खुद ही उसका साथी बनकर खेलता रहता है। मुहल्लेके लड़के उसे मौक़ा पाते ही 'नवाबका नाती' कहकर चिढ़ाने लगते हैं। गांवके लोग रायचरणके ऐसे उन्मत्तवत् आचरणपर आश्चर्य करने लगे।

फुलना जब पढ़ने लायक हुआ, तब रायचरण अपनी ज़मीन वग़ैरह सब बेच-खोचकर लड़केको कलकत्ते ले गया। वहां बड़ी मुश्किलसे एक नौकरी तलाश करके फुलनाको विद्यालयमें भरती कर दिया। खुद जैसे-तैसे गुजर कर लेता, पर लड़केको अच्छा खाना, बढ़िया पोशाक और अच्छी शिक्षा देनेमें कोई कसर न रखता। मन-ही-मन कहता—"लल्लूजी, तुम मोहवश मेरे घर आये हो, इसलिये तुम्हारा निरादर मुझसे न होगा।"

इसी तरह बारह वर्ष बीत गये। लड़का पढ़ने-लिखनेमें तेज़ है और देखनेमें भी अच्छा, मोटा-ताजा, सांवले रंगका है—केश-वेशकी सजावटकी तरफ़ ध्यान है, मिजाज़ कुछ आरामतलब और शौकीन है। बापको ठीक बाप जैसा नहीं समझता। कारण, रायचरण स्नेह करनेमें बाप और सेवा करनेमें नौकर था। और उसमें एक त्रुटि भी थी, वह फुलनाका बाप है—यह बात उसने सबसे छिपा रखी थी। जिस छात्रावासमें फुलना रहता था, वहांके और सब लड़के गँवार रायचरणकी हँसी उड़ाया करते, और सम्भवतः पिताकी अनुपस्थितिमें फुलना भी

उसमें शामिल हो आया करता था। फिर भी, वत्सल-स्वभाव भोलभाले रायचरणको सभी लड़के बहुत प्यार करते थे, और फुलना भी प्यार करता था, परन्तु पहले ही कहा जा चुका है कि बापके समान नहीं, उसमें थोड़ासा अनुग्रह मिला हुआ था।

रायचरण अब वृद्ध हो चला है। उसके मालिक हर वक्त काम-काजमें दोष पकड़ते रहते हैं। वास्तवमें उसका शरीर भी शिथिल हो चला है, काममें भी उतना ध्यान नहीं रहता, बेर-बेर भूल जाता है,—पर जो पूरी तनख्वाह देता है, वह बुढ़ापेका उज्र नहीं सुन सकता। इधर वह जो खेत-जोत बेचकर रुपये लाया था, वे भी खत्म हो चले। फुलना भी आजकल अपनेको कपड़े-लत्तोंसे तंग अनुभव करने लगा है।

तीसरा परिच्छेद

एक दिन रायचरणने सहसा कामसे छुट्टी ले ली, और फुलनाको कुछ रुपये देकर बोला—"जरूरी काम है, मैं कुछ दिनके लिये देश जा रहा हूँ।" बस, इतना कहकर वह बारासत पहुंचा। अनुकूल बाबू उस समय बारासतमें मुन्सिफ थे।

अनुकूलके और कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ, गृहिणी अब भी उसी बच्चेके शोकमें आंसू बहाया करती हैं।

एक दिन सन्ध्याके समय बाबू साहब कचहरीसे लौटकर आराम

कर रहे थे, और गृहिणी किसी साधु-महात्मासे सन्तानकी कामनासे बड़ी क़ीमत देकर कोई जड़ी और आशीर्वाद ख़रीद रही थीं,—इतनेमें आँगनसे आवाज़ आई—"जय हो माँजीकी !"

बाबू साहब बोले—"कौन है ?"

रायचरणने आकर नमस्कार किया, बोला—"मैं हूं, रायचरण ।"

बूढ़ेको देखकर अनुकूलका हृदय :पसीज गया। उसकी मौजूदा हालतके बारेमें हज़ारों प्रश्न किये, और फिरसे उसे कामपर बहाल करनेको कहा।

रायचरणने सूखी हँसी हँसकर कहा—"माँजीको पालागन करना चाहता हूं।"

अनुकूल बाबू उसे अपने साथ भीतर ले गये। माँजीने रायचरणका प्रसन्नतासे आदर नहीं किया—रायचरणने उस ओर कुछ ध्यान न देते हुए हाथ जोड़कर कहा—"माँजी मैंने ही आपका लड़का चुराया था। पद्माने नहीं, और किसीने भी नहीं, उसका चुरानेवाला कृतघ्न अधम मैं ही—"

अनुकूल कह उठे—"क्या कह रहा है तू ! कहां है वह !"

"जी, मेरे ही पास है, मैं परसों ला दूँगा।"

× × × ×

उस दिन रविवार था, कचहरीकी छुट्टी थी। सवेरेसे स्त्री-पुरुष दोनों-जने बड़ी उत्सुकतासे रायचरणके आनेकी राह देख रहे हैं। दस बजे फुलनाको साथ लेकर रायचरण हाज़िर हुआ।

अनुकूलकी स्त्रीने कुछ भी पूछताछ—कुछ भी विचार न किया ; उसे वे गोदमें बिठाकर, छातीसे चिपटाकर, चूमकर अतृप्त नयनोंसे उसका मुखड़ा देखकर, रोती-हँसती हुई व्याकुल हो उठीं। दर-असल लड़का देखनेमें बहुत अच्छा था, पहनावेमें रहन-सहनमें गरीबीका कोई लक्षण ही नहीं दिखाई देता। मुँहपर अत्यन्त प्रियदर्शन विनीत सलज्ज भाव देखकर अनुकूलके हृदयमें भी सहसा स्नेह उमड़ आया।

फिर भी उन्होंने दृढ़ताके साथ पूछा—"कोई सबूत है ?"

रायचरणने कहा—"ऐसे कामका सबूत क्या हो सकता है ? मैंने जो आपका लड़का चुराया था, इस बातको सिर्फ भगवान ही जानते हैं, संसारमें और कोई भी नहीं जानता।"

अनुकूलने सोच-समझकर निश्चय किया कि लड़केको पाते ही उनकी स्त्रीने जिस आग्रहके साथ उसे अपना लिया है, उसे देखते हुए अब सबूत चाहना युक्ति-युक्त नहीं है ; जैसे भी बने, विश्वास करना ही अच्छा है। उसके सिवा और भी एक बात है, रायचरणको ऐसा लड़का मिल भी कहांसे सकता है ? और बूढ़ा नौकर उन्हें बिना कारण ऐसा धोखा ही क्यों देगा ?—

लड़केसे भी बातचीत करनेपर मालूम हुआ कि बचपनसे ही वह रायचरणके साथ है और अब तक उसे ही वह पिता समझता था, परन्तु रायचरणने कभी भी उसके साथ पिताके समान व्यवहार नहीं किया, बल्कि नौकर जैसा ही बरताव करता रहा है।

अनुकूलने मनसे सन्देहको दूर कर कहा—"लेकिन रायचरण, तू अब हम लोगोंकी परछाँही भी न छू सकेगा।"

रायचरणने हाथ जोड़कर कहा—"मालिक साहब, इस बुढ़ापेमें कहाँ जाऊँगा !"

मालिकिनने कहा—"नहीं नहीं, रहने दो ! लल्लू मेरा खुश बना रहे ! उसे मैं माफ़ करती हूं।"

न्यायपरायण अनुकूलने कहा—"जैसा उसने काम किया है, उसे माफ़ नहीं किया जा सकता।"

रायचरणने अनुकूलके पैर पकड़कर कहा—"मैंने नहीं किया, भगवानने किया है।"

अपना पाप ईश्वरके सिर मढ़नेकी कोशिश करते देख अनुकूल और भी नाराज़ हो गये, बोले—"जिसने ऐसा विश्वासघातका काम किया है, उसपर अब फिर विश्वास करना ठीक नहीं।"

रायचरणने मालिकके पैर छोड़कर कहा—"ऐसा मैं नहीं हूँ मालिक!"

"तो कौन है?"

"मेरी तक़दीर!"

परन्तु ऐसी कैफ़ियतसे किसी शिक्षित आदमीको सन्तोष नहीं हो सकता।

रायचरणने कहा—"संसारमें मेरा और कोई भी नहीं है।"

फुल्नाने जब देखा कि वह मुन्सिफका लड़का है—रायचरणने अब तक उसे चुरा रखा था और अपना लड़का बताकर उसका अपमान करता रहा है, तब उसे मन-ही-मन कुछ गुस्सा आया। परन्तु फिर भी उसने उदारताके साथ पितासे कहा—"पिताजी, उसे माफ़ कर दो। घरमें नहीं रखना चाहते, तो उसके लिये कुछ माहवारी बाँध दो।"

इसके बाद रायचरणने मुँहसे कुछ भी न कहकर एक बार अच्छी तरह पुत्रका मुँह देखा, सबको प्रणाम किया, उसके बाद दरवाज़ेसे बाहर निकलकर संसारके असंख्य आदमियोंमें मिल गया। महीनेके अन्तमें अनुकूलने जब उसके देशके पतेसे कुछ रुपये भेजे, तो वे रुपये वापस आ गये। वहाँ कोई न था!

[अगहन, १६४८]

सम्पत्ति-समर्पण

पहला परिच्छेद

वृन्दावन कुण्डू बहुत गुस्सेमें आकर बापसे बोला—"लो, मैं अभी चला।"

बाप, यज्ञनाथ कुण्डूने कहा—"नालायक, कृतघ्न कहींका, छुटपनसे अब तक जो तुझे खिला-पिलाकर इतना बड़ा किया है, उस कर्ज़को तो पहले चुका दे, तब तेज़ी दिखाना।"

यज्ञनाथके घर जैसा खाने-पहरनेका चलन था, उसे देखते हुए तो यह नहीं मालूम होता कि अधिक खर्च हुआ होगा। प्राचीन कालमें मुनि-ऋषिगण आहार-वस्त्र-सम्बन्धी खर्चमें हदसे ज़्यादा किफायत करके ज़िन्दगी बसर करते थे; यज्ञनाथके रहन-सहनमें भी वही आदर्श झलकता था। परन्तु सम्पूर्ण सिद्धि लाभ न कर सके थे,—कुछ तो आधुनिक समाजके दोषसे और कुछ शरीर-रक्षा-सम्बन्धी प्रकृतिके अन्यायपूर्ण अनिवार्य नियमोंके अनुरोधसे।

लड़का जब तक अविवाहित रहा, तब तक तो सहता रहा ; पर विवाह होनेके बादसे ही खाने-पहरनेके बारेमें पिताके अत्यन्त विशुद्ध आदर्शके साथ पुत्रके आदर्शका मेल न बैठा। यह बात देखनेमें आई कि लड़केका आदर्श क्रमशः आध्यात्मिकतासे हटकर भौतिकताकी ओर बढ़ता जा रहा है। सरदी-गरमी और भूख-प्याससे सताये हुए पार्थिव समाजकी देखादेखी उसके कपड़ोंका नाप और भोजनकी तौल उत्तरोत्तर बढ़ने ही लगी।

इस बारेमें पिता-पुत्रमें अक्सर झगड़ा होने लगा। अन्तमें, वृन्दावनकी स्त्रीकी कठिन बीमारीमें वैद्यराजने एक क़ीमती दवा बताई। बस, इसीपर से यज्ञनाथने उन्हें अनभिज्ञ क़रार देकर उसी समय विदा कर दिया। वृन्दावनने पहले तो हाथ-पैर जोड़े-जाड़े, फिर तनातनी भी की, पर कुछ नतीजा न निकला। स्त्रीकी मृत्यु हो जानेपर बापको उसने स्त्री-हत्याकारी कहकर गाली दी।

बापने कहा—"क्या दवाई खाकर कोई मरता नहीं? क़ीमती दवा खाकर ही अगर सब बच जायँ, तो फिर राजा बादशाह वग़ैरह क्यों मरते हैं! जैसे तेरी माँ मरी है, तेरी दादी मरी है, तेरी स्त्री क्या उनसे ज्यादा धूमधामके साथ मरती?"

वास्तवमें यदि वृन्दावन शोकमें अन्धा न होकर स्थिरचित्तसे विचार कर देखता, तो इस बातसे उसे बहुत कुछ तसल्ली मिलती। उसकी माँ, दादी, किसीने भी मरते वक़्त दवा नहीं खाई। इस घरकी ऐसी ही सनातन प्रथा है, परन्तु आधुनिक लोग प्राचीन नियमसे मरना भी नहीं चाहते। जिस समयकी यह बात है, तब अंग्रेज़ोंका

यहां आना शुरू ही हुआ था। परन्तु उस समय, तबके पुराने ज़मानेके आदमी तबके नये ज़मानेके आदमियोंका हाल-चाल देखकर दंग रह जाते और ज़्यादा तम्बाकू पिया करते थे।

कुछ भी हो, तबके नई रोशनीके वृन्दावनने तबके पुरानी रोशनीके यज्ञनाथसे झगड़ा कर डाला, और कहा—"लो, मैं चला।"

बापने उसे उसी दम चले जानेकी इजाज़त देकर सबके सामने कहा—"वृन्दावनको अगर मैं अब एक पाई भी दूँ, तो वह गो-रक्त गिरानेके बराबर होगा।" वृन्दावनने भी सबके सामने कह दिया—"मैं भी अगर तुम्हारी एक दमड़ी भी छुऊँ, तो मुझे माताकी हत्याका पाप लगे।" इसके बाद पिता-पुत्रका विच्छेद हो गया।

बहुत दिनोंकी शान्तिके बाद ऐसे एक छोटे-मोटे विप्लवसे गाँवके लोग ज़रा खूब प्रसन्न हो उठे। खासकर यज्ञनाथके लड़केके उत्तराधिकारसे वंचित होनेके बाद सभी कोई अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार यज्ञनाथके दुःसह पुत्र-वियोगके दुःखको दूर करनेकी कोशिश करने लगे। सभी कोई कहने लगे—"मामूली-सी एक बहूके लिये बापके साथ लड़ना-झगड़ना सिर्फ इसी ज़मानेमें सम्भव है।"

उन लोगोंने एक विशेष युक्ति दिखाई; कहने लगे—"एक बहूके जानेपर दूसरी बहू तो झट मिल सकती है, पर बाप तो दूसरा सिर दे मारनेपर भी नहीं मिल सकता।" दलील बहुत ही मज़बूत है, इसमें सन्देह नहीं; पर हमारा विश्वास तो ऐसा है कि वृन्दावन जैसा लड़का इस युक्तिको सुनकर अनुताप न करता, बल्कि कुछ खुश ही होता।

वृन्दावनके जाते वक्त पिताको अधिक क्षोभ हुआ हो, सो भी

नहीं। उसके चले जानेसे एक तो खर्च घटा, दूसरे एक बड़ा-भारी डर भी जाता रहा। हर वक्त यह चिन्ता रहती थी कि न जाने कब किस घड़ी वह ज़हर देकर उन्हें मार डाले! एक तो वैसे ही थोड़ा खाते थे, उसके साथ ज़हरकी चिन्ता! बहूकी मौतके बाद यह चिन्ता कुछ घटी थी, और अब लड़केके चले जानेपर तो बिलकुल ही जाती रही।

सिर्फ एक वेदना उनके मनमें खटक रही थी। यज्ञनाथका चार वर्षका एक नाती है गोकुलचन्द्र, उसे भी वृन्दावन साथ लेता गया है। गोकुलके खाने-पहरनेका खर्च औरोंकी अपेक्षा कुछ कम था, इसलिये उसपर यज्ञनाथका स्नेह बहुत कुछ निष्कण्टक था। फिर भी, वृन्दावन जब उसे लेकर चला गया, तो उस अकृत्रिम शोकमें भी यज्ञनाथके मनमें क्षण-भरके लिये एक जमा-खर्चके हिसाबका उदय हो उठा; दोनोंके चले जानेसे महीनेमें कितना खर्च घटा और वर्षमें कितनी बचत हुई— और वह कितने रुपयोंकी ब्याज हुई।

परन्तु फिर भी, सूने घरमें गोकुलचन्द्रका ऊधम न होनेसे, घरमें टिकना मुश्किल हो गया। आजकल यज्ञनाथको ऐसी मुश्किलका सामना करना पड़ रहा है कि पूजाके वक्त कोई विघ्न नहीं डालता, खाते समय कोई छीनकर नहीं खाता, हिसाब लिखते वक्त दवात लेकर भाग जाय, ऐसा भी कोई नहीं रहा। बिना उपद्रवके शान्तिसे स्नानाहार सम्पन्न करते हुए उनका चित्त व्याकुल होने लगा।

मालूम हुआ, मानो मरनेके बाद ही लोग ऐसी उत्पात-हीन शून्यता प्राप्त करते हैं; खासकर बिछौनेपर उनके नातीके किये हुए छेद और बैठनेकी चटाईपर उक्त चित्रकार-द्वारा अंकित स्याहीके चिह्नको देख-देखकर

उनका हृदय और भी अशान्त हो उठता। उस अमिताचारी बालकने—दो ही बरसकी उमरमें बाबाकी पहननेकी धोती बिलकुल फाड़-चीर डालनेके कारण—बाबाका बहुत-कुछ तिरस्कार सहा था ; अब उन्होंने जब अपने शयनगृहमें उस शत-ग्रन्थि-विशिष्ट मलिन परित्यक्त चीरखण्डको देखा, तो उनकी आँखें डबडबा आईं ; उसे दिआकी बत्ती अथवा पलीता बनाने या अन्य किसी घर-गिरस्तीके काममें न लगाकर जतनसे सन्दूकमें रख दिया और मन-ही-मन प्रतिज्ञा की कि 'यदि गोकुल वापस आ जावे और यहाँ तक कि अगर सालमें एक धोती भी फाड़-चीर डाले, तो भी उसे डाँटेंगे-डपटेंगे नहीं।'

परन्तु गोकुल न लौटा, और यज्ञनाथकी उमर मानो पहलेसे और भी जल्दी-जल्दी बढ़ने लगी, सूना घर दिनों-दिन औरभी सूना मालूम देने लगा।

यज्ञनाथसे अब घरमें टिका नहीं जाता। दोपहरको जब सब रईस लोग खा-पीकर सुखनिद्रा लेते हैं, तब यज्ञनाथ हुक्का हाथमें लिये मुहल्ले-मुहल्ले घूमा करते हैं। उनके इस नीरव मध्याह्न-भ्रमणके समय रास्तेके लड़के खेल छोड़कर निरापद स्थानको भाग जाते और उनकी मितव्ययिताके सम्बन्धमें स्थानीय कवि-रचित विविध-छन्दोबद्ध रचनाएँ श्रुतिगम्य-ऊँचे स्वरमें गाया करते। कहीं दिन-भर फाँके ही न गुजारना पढ़े, इस डरसे लोग उनका पितृदत्त नाम तक उच्चारण न करते थे, इसीलिये सब अपनी इच्छानुसार उनका नया नाम रख लिया करते थे। बूढ़े उन्हें 'यज्ञनाश' कहा करते थे ; पर छोकड़े न जाने क्यों उन्हें 'चमगादड़' कहकर पुकारा करते थे, इसका कुछ स्पष्ट कारण नहीं मालूम पड़ता।

दूसरा परिच्छेद

एक दिन दोपहरको इसी तरह आम्रतरुकी छायासे शीतल ग्राम्य पथमें यज्ञनाथ घूम रहे थे,—देखा, एक अपरिचित बालक गाँवके लड़कोंका सरदार बनकर एक बिलकुल नये उपद्रवका पन्थ दिखला रहा है। और-और लड़के उसके इस चरित्र-बल और कल्पनाकी नवीनतापर मुग्ध होकर तन-मनसे उसके वशमें हो गये हैं।

और-सब लड़के जैसे बुड्ढेको देखकर खेल छोड़कर भाग जाया करते थे, इसने वैसा न करके झटसे बुड्ढेके पास जाकर उनके ऊपर अपनी चद्दर झाड़ दी, चद्दरेमें से एक बन्धन-मुक्त गिरगिट निकलकर बुड्ढेके ऊपर गिरा और तुरत पेड़ोंकी तरफ भाग गया। आकस्मिक त्राससे बुड्ढेके रोंगटे खड़े हो गये। लड़कोंमें एक बड़ा-भारी खुशीका शोर मच गया। और कुछ दूर आगे जाते-न-जाते यज्ञनाथके कंधे परसे अंगौछा ही ग़ायब हो गया, देखा तो उस अपरिचित बालकके सिरपर वह पगड़ीका काम दे रहा है।

इस अज्ञात मानव-पुत्रके द्वारा इस प्रकार नये ढंगका शिष्टाचार प्राप्त करके यज्ञनाथ बहुत ही सन्तुष्ट हुए। किसी भी बालकसे ऐसी असंकोच आत्मीयता उन्होंने बहुत दिनोंसे न पाई थी। बहुत बार बुला-बुलाकर और तरह-तरहके प्रलोभन देकर यज्ञनाथने उसे कुछ-कुछ वशमें कर लिया।

पूछा—“तेरा नाम क्या है?”

उसने कहा—“निताई पाल।”

"कहाँ रहता है ?"

"नहीं बताऊँगा।"

"तेरे बापका नाम क्या है ?"

"नहीं बताऊँगा।"

"क्यों नहीं बतायेगा ?"

"मैं घर छोड़कर भाग आया हूं।"

"क्यों ?"

"मेरा बाप मुझे पाठशालामें भरती करना चाहता था।"

यज्ञनाथने उसी समय समझ लिया कि ऐसे लड़केको पाठशालामें भरती करना बिलकुल फिज़ूलका ख़र्च बढ़ाना है, और बापकी बुद्धि-हीनताका परिचायक है।

यज्ञनाथने कहा—"हमारे घर चलकर रहेगा ?"

बालकने ज़रा भी आपत्ति न की और उसके घर जाकर ऐसी निःसंकोचताके साथ आश्रय लिया कि मानो वह कोई सड़कके किनारेकी वृक्षकी छाया हो।

सिर्फ़ इतना ही नहीं, खाने-पहननेके सम्बन्धमें ऐसी दृढ़तासे अपनी इच्छानुसार हुक्म चलाने लगा कि मानो उसने पहले ही उसके पूरे दाम चुका दिये हों। और इसी विषयको लेकर कभी-कभी घर-मालिकसे उसकी तकरार भी हो जाया करती। अपने लड़केको परास्त करना सहज है, पर दूसरेके लड़केके आगे यज्ञनाथको हार माननी पड़ी।

तीसरा परिच्छेद

यज्ञनाथके घर निताई पालका ऐसा कल्पनातीत आदर देखकर गाँवके लोग तअज्जुब करने लगे। समझने लगे कि बुड्ढा अब ज़्यादा जीयेगा नहीं और मरते वक्त इस परदेशी छोकड़ेको सब धन-दौलत दे जायगा।

बालकपर सभी कोई ईर्ष्या करने लगे और उसका अनिष्ट करनेको तैयार हो गये। परन्तु वृद्ध यज्ञनाथ उसे छातीकी पसलियोंकी तरह दुबकाये फिरता।

लड़का कभी-कभी चले जानेकी धमकी दिया करता। यज्ञनाथ उसे प्रलोभन देते, "ना बेटा, तुझे मैं अपनी तमाम दौलत दे जाऊँगा।" लड़केकी उमर तो थोड़ी थी, पर इस बातका अर्थ और मूल्य वह पूरी तरहसे समझ सकता था।

तब गाँवके लोग उस लड़केके बापकी तलाश करने लगे। वे सभी कोई कहने लगे—"हाय, बाप-माँको न जाने कितना कष्ट होगा! लड़का भी तो कम शैतान नहीं है।" यह कहकर लड़केको अकथ्य भाषामें गालियाँ देते। उसकी इतनी ज़्यादा चरपराहट होती कि उसमें न्याय-बुद्धिकी उत्तेजनाकी अपेक्षा स्वार्थकी जलन ही अधिक पाई जाती।

बुड्ढेने एक दिन एक राहगीरसे सुना कि दामोदर पाल नामका एक आदमी अपने लापता लड़केकी खोज करता फिरता है, और वह इधर ही को आ रहा है।

निताई इस समाचारके सुनते ही घबरा उठा। भावी जायदादको छोड़-छाड़कर वह भागनेको तैयार हो गया।

यज्ञनाथ निताईको बार-बार समझाने लगे—"तुझे मैं ऐसी जगह छिपा रखूंगा कि कोई ढूँढ़ ही नहीं पायेगा—गाँवके लोग भी नहीं।"

बालक बड़े कौतूहलमें पड़ गया, बोला—"कहां? दिखा दो ज़रा!"

यज्ञनाथने कहा—"अभी दिखानेसे सब भेद खुल जायगा। रातको दिखाऊँगा।"

निताई इस नये रहस्यके आविष्कारकी आशासे फूला न समाया। उसने मन-ही-मन संकल्प किया कि बाप जब अपना-सा मुँह लिये लौट जायगा, तब लड़कोंसे शर्त बदकर वहां दुबका-चोरी खेलेंगे। कोई ढूंढ़ न पायेगा! बड़ा मज़ा आयेगा! बाप आकर तमाम गाँव छान डालेगा, फिर भी उसे न पायेगा, यह भी बड़े मज़ेकी बात होगी।

दोपहरको यज्ञनाथ बालकको घरमें बन्द करके कहीं बाहर चले गये। वापस आनेपर निताईने उनसे प्रश्न करते-करते नाकों-दम कर दिया।

शाम होते-न-होते बोला—"चलो।":

यज्ञनाथने कहा—"अभी रात नहीं हुई है।"

निताईने फिर कहा—"रात हो गई है, बाबा, चलो।"

यज्ञनाथने कहा—"अभी मुहल्लेके लोग सोये नहीं हैं।"

निताईने क्षण-भर ठहरकर फिर कहा—"अब सो गये, चलो।"

रात बढ़ने लगी। निद्रातुर निताई बड़ी मुश्किलसे नींदको

रोकनेकी कोशिश करता रहा, पर फिर भी वह बैठा-बैठा ऊँघने लगा। आधी रातको यज्ञनाथ निताईका हाथ पकड़कर निद्रित ग्रामके अन्धकारमय मार्गसे बाहर निकले। किसी तरहका शोर नहीं था, सुन-सान रात थी, सिर्फ बीच-बीचमें कुत्तोंका भौंकना सुन पड़ता था। कभी-कभी निशाचर पक्षी पैरोंकी आहट सुनकर जंगलकी ओर उड़ जाते थे। निताईने डरके मारे यज्ञनाथका हाथ ज़ोरोंसे पकड़ लिया।

लम्बी रास्ता तय करके अन्तमें दोनों एक जंगलके अन्दर एक देवता-हीन टूटे-फूटे मन्दिरमें जा पहुंचे। निताईने कुछ उदास होकर कहा—"यहांपर?"

उसने जो सोचा था, वह तो नहीं हुआ! इसमें तो कोई विशेष रहस्य नहीं मालूम पड़ता। घर छोड़नेके बाद ऐसे पुराने खंडहर मन्दिरमें उसे कितनी ही रातें बितानी पड़ी हैं। जगह तो दुबका-चोरी खेलनेके लिए बुरी नहीं है, पर यहांसे ढूंढ़ निकालना कोई बड़ी बात नहीं।

यज्ञनाथने मन्दिरके बीचमेंसे एक पत्थर उठाया। बालकने देखा, नीचे एक कोठा-सा बना है, और वहां दीपक जल रहा है। देखकर उसे बहुत ही आश्चर्य और कौतूहल हुआ, साथ ही डर भी लगने लगा। एक नसैनीके सहारे यज्ञनाथ नीचे उतर गये, उनके पीछे-पीछे निताई भी डरते-डरते उतरा।

नीचे जाकर देखा, चारों तरफ़ पीतलके कलसे रखे हैं। बीचमें एक आसन है और उसके सामने सिन्दूर, चन्दन, फूलोंकी माला

आदि पूजाकी सामग्रियाँ रखी हैं। बालकने कौतूहल दूर करनेके लिये आगे बढ़कर देखा, कलसोंमें सिर्फ रुपये और मोहरें भरी हुई हैं।

यज्ञनाथने कहा—"निताई, मैंने कहा था, मैं अपनी दौलत तुम्हें दे जाऊँगा। मेरे पास ज़्यादा कुछ नहीं है, सिर्फ ये ही थोड़ेसे घड़े ही मेरी पूँजी है। आज ये सब मैं तुम्हें सौंप दूँगा।"

बालक उछल पड़ा, बोला—"ये सब ? इसमें से एक भी रुपया तुम न लोगे ?"

"अगर लूँ, तो मेरे हाथोंमें कोढ़ हो जाय। पर एक बात है। अगर मेरा लापता नाती गोकुलचन्द्र, या उसका लड़का, या पोता, या उसके वंशका कोई भी आवे, तो उसे ये सब रुपये गिन देने पड़ेंगे।"

बालकने सोचा, बुड्ढा पागल हो गया है। उसी समय उसने स्वीकार कर लिया—"अच्छा।"

यज्ञनाथने कहा—"तो इस आसनपर बैठ जाओ।"

"क्यों ?"

"तुम्हारी पूजा होगी।"

"क्यों ?"

"ऐसा नियम है।"

बालक आसनपर बैठ गया। यज्ञनाथने उसके माथेपर चन्दन लगाया, सिन्दूरका टीका किया, गलेमें माला पहना दी; सामने बैठकर बड़-बड़ करके मन्त्र पढ़ने लगे।

देवता बनकर आसनपर बैठकर मन्त्र सुननेमें निताईको डर लगने लगा; चिल्ला उठा—"बाबा !"

यज्ञनाथ कुछ उत्तर न देकर मन्त्र पढ़ते गये।

अन्तमें, बड़ी मुश्किलसे एक-एक कलसेको घसीट-घसीटकर बालकके सामने रखते और उत्सर्ग करते गये, प्रत्येक बार कहलाते गये—"युधिष्ठिर कुण्डूके पुत्र गदाधर कुण्डू, तस्य पुत्र प्राणकृष्ण कुण्डू, तस्य पुत्र परमानन्द कुण्डू, तस्य पुत्र यज्ञनाथ कुण्डू, तस्य पुत्र वृन्दावन कुण्डू, तस्य पुत्र गोकुलचन्द्र कुण्डूको अथवा उसके पुत्र वा प्रपौत्रको अथवा उसके वंशके न्याय्य उत्तराधिकारीको ये सारे रुपये गिन दूँगा।"

इस तरह बार-बार एक ही बात दुहराते-दुहराते लड़का हतबुद्धि-सा हो गया। उसकी जीभ उत्तरोत्तर लड़खड़ाने लगी। जब तक यह अनुष्ठान समाप्त हुआ, तब तक दीपकके धुआं और दोनोंकी निःश्वास-वायुसे वह छोटासा गह्वर भापसे भर गया। बालकका तालू सूख गया, हाथ-पैर जलने लगे, दम घुटनेकी नौबत आ गई।

दिआकी लौ धीमी पड़ गई और वह सहसा बुझ गया। अन्धकारमें बालकने अनुभव किया—यज्ञनाथ नसैनीके सहारे ऊपर चढ़ रहा है।

व्याकुल होकर पूछ उठा—"बाबा, कहां जाते हो?"

यज्ञनाथने कहा—"मैं चला। तू यहीं रह—तुझे अब कोई भी न ढूँढ़ सकेगा। पर याद रखना, यज्ञनाथका पौत्र, वृन्दावनका पुत्र गोकुलचन्द्र।"

कहकर बुड्ढा ऊपर चढ़ आया और झटसे नसैनी खींच ली। लड़केका दम घुटने लगा, उसने बड़े कष्टसे इतना कहा—"बाबा, मैं बापूके पास जाऊँगा।"

यज्ञनाथने उस छेदपर पत्थर ढक दिया, और उसपर कान लगाकर सुना, निताईने और एक बार रुद्ध कण्ठसे कहा—"बापू !"

उसके बाद किसी चीज़के गिरनेका धमाका हुआ, फिर कोई शब्द नहीं हुआ। इस प्रकार यक्षके हाथमें धन सौंपकर यज्ञनाथ उस पत्थरके टुकड़ेको मट्टीसे ढकने लगे। उसके ऊपर भग्न मन्दिरकी ईंटोंका ढेर लगा दिया। उसपर घास जमाई और जंगलके छोटे-छोटे पौधे लगा दिये। रात क़रीब-क़रीब ख़त्म हो चुकी थी, पर उनसे वह जगह छोड़ी न गई। रह-रहकर बार-बार ज़मीनसे कान लगाकर सुनने लगे। मालूम होने लगा, मानो बहुत दूरसे, पृथ्वीके अतलस्पर्शसे एक क्रन्दनध्वनि उठ रही है। मालूम हुआ, मानो रात्रिका आकाश सिर्फ उसी एक ही ध्वनिसे भरा जा रहा है, पृथ्वीके समस्त निद्रित प्राणी मानो उस शब्दसे शय्यापर जागकर बैठ गये हैं और कान लगाकर सुन रहे हैं।

बुड्ढा घबरा-घबराकर बार-बार मिट्टीपर मिट्टी जमा कर रहा था। मानो ऐसे ही वह किसी तरह पृथ्वीका मुँह बन्द कर देगा।

वह कौन बुला रहा है—"बापू !"

बुड्ढा मिट्टीपर लात जमाकर कहने लगा—"चुप हो जा। सब सुन लेंगे !"

फिर किसीने पुकारा—"बापू !"

देखा, घाम चढ़ आई है। डरता हुआ मन्दिरसे निकलकर खेतोंमें पहुंचा।

वहांपर भी किसीने पुकारा—"बापू !" यज्ञनाथने चौंककर पीछेकी तरफ़ देखा तो वृन्दावन !

वृन्दावनने कहा—"बापू, मैंने सुना है कि मेरा लड़का तुम्हारे यहां आ छिपा है, दो उसे!"

बुड्ढेने आँखें मुँह विकृत करके वृन्दावनके ऊपर झुककर कहा—"तेरा लड़का?"

वृन्दावनने कहा—"हां, गोकुल,—अब उसका नाम निताई पाल है, मेरा नाम दामोदर। आस-पास सब जगह तुम्हारी नामवरी है, इसलिये हम लोगोंने शर्मके मारे नाम बदल दिया है, नहीं तो कोई हम लोगोंका नाम नहीं लेता।"

बुड्ढा दसों उँगलियोंसे आकाश टटोलता हुआ मानो हवाको ज़ोरोंसे पकड़नेकी कोशिश करने लगा—धड़ामसे ज़मीनपर पछाड़ खाकर गिर पड़ा।

होश आनेपर यज्ञनाथ वृन्दावनको मन्दिरकी तरफ़ घसीट ले गये। बोले—"रोना सुन पड़ता है?"

वृन्दावनने कहा—"नहीं तो।"

"कान लगाकर सुन तो सही, 'बापू' कहकर कोई पुकार रहा है?"

वृन्दावनने कहा—"नहीं तो!"

बुड्ढा अब मानो बिलकुल निश्चिन्त हो गया।

उसके बाद, बुड्ढा सभीसे पूछता फिरता—"रोना सुन पड़ता है?" पागलोंकी-सी बात सुनकर सब हँस देते।

अन्तमें चार वर्षके बाद बुड्ढेके मरनेके दिन आये। जब आँखोंके सामनेसे दुनियाँका दीपक बुझनेको हुआ और साँस रुकने लगी, तब विकारके वेगमें वह सहसा उठकर बैठ गया; एक बार दोनों

हाथोंसे चारों ओर टटोलकर मुमूर्षुने कहा—"निताई, मेरी नसैनी किसने उठा ली ?"

जब उस वायु-हीन आलोक-हीन महागह्वरसे निकलनेकी नसैनी न मिली, तो वह धमसे बिछौनेपर गिर पड़ा। संसारके आँख-मिचौनीके खेलमें जहाँ कोई किसीको ढूँढ़ नहीं सकता, वहींको रवाना हो गया।

[पौष, १९४८]

दलिया

भूमिका

पराजित शाह शुजाने औरंगज़ेबके भयसे भागकर आराकानके राजाकी शरण ली। साथमें थीं तीन सुन्दरी कन्याएँ। आराकानके राजाने चाहा कि उन कन्याओंके साथ राजपुत्रोंका विवाह हो जाय। इस प्रस्तावके छेड़नेपर शाह शुजा बहुत ही असन्तुष्ट हुए। नतीजा यह हुआ कि राजाके आदेशसे एक दिन उन्हें छलसे नावपर बिठाकर बीच नदीमें डुबो देनेकी कोशिश की गई। उस विपत्तिके समय छोटी लड़की अमीनाको उन्होंने स्वयं नदीमें पटक दिया। बड़ी लड़कीने अपने-आप आत्महत्या कर ली। मझली जुलेखा पिताके एक विश्वस्त कर्मचारी रहमत अलीके साथ तैरकर भाग गई। शुजाने लड़ते-लड़ते अपनी जान दे दी।

अमीना स्रोतमें बहकर दैवयोगसे शीघ्र ही एक धीवरके जालमें उलझ गई और धीवरने उसे तुरंत ही निकाल लिया। वहींपर वह पली और बड़ी हुई।

इस बीचमें वृद्ध राजाकी मृत्यु हो गई, और युवराज गद्दीपर बैठे।

पहला परिच्छेद

एक दिन सवेरे बूढ़े धीवरने आकर अमीनासे डाँटकर कहा—"तिन्नी!" धीवरने आराकानी भाषामें अमीनाका नया नाम रखा था, तिन्नी। "तिन्नी, आज सवेरेसे तुझे हो क्या गया! काम-धन्धेमें बिलकुल हाथ ही नहीं लगाया! हमारे नये जालमें गौंद नहीं लगा है, हमारी नाव—"

अमीनाने धीवरके पास जाकर बड़े स्नेहके साथ कहा—"बाबा, आज मेरी बहन आई है बहन! इसलिये आज छुट्टी मनाई है।"

"अरे! तेरी बहन कहांसे आई री, तिन्नी!"

जुलेखा न जाने कहाँसे निकल आई, बोली—"मैं हूं, मैं।"

बूढ़ा दंग रह गया। फिर जुलेखाके बिलकुल पासमें आकर गौरसे उसका मुँह देखने लगा।

झटसे पूछ बैठा—"तू काम-काज जानती है?"

अमीनाने कहा—"बाबा, जीजीके बदले मैं काम कर दिया करूँगी। जीजी काम नहीं कर सकती।"

बुड्ढेने कुछ देर तक सोचकर कहा—"तू रहेगी कहां?"

जुलेखाने कहा—"अमीनाके पास।"

बुड्ढेने सोचा, यह तो बड़ी मुश्किल हुई! पूछने लगा—"खायगी क्या?"

जुलेखाने कहा—"उसके लिये इन्तज़ाम है"—कहकर अवज्ञाके साथ धीवरके सामने एक मोहर फेंक दी।

अमीनाने उसे उठाकर धीवरके हाथमें दिया, और चुपकेसे कहा—"बाबा, अब कुछ मत कहना, तू कामपर जा। बहुत अबेर हो गई है।"

जुलेखा छद्मवेशमें अनेक स्थानोंमें घूमती हुई अन्तमें अमीनाका पता लगाकर धीवरकी झोंपड़ीमें कैसे आ पहुंची, इसकी लम्बी-चौड़ी कथा है, कहनेसे एक अलग कहानी ही बन जायगी। उसका रक्षक अपना नाम रहमत् शेख रखकर आराकानकी राज-सभामें काम कर रहा है।

दूसरा परिच्छेद

छोटीसी नदी बह रही थी, प्रथम ग्रीष्मकी शीतल प्रभात-वायुसे केलू वृक्षकी लाल-लाल पुष्प-मञ्जरियोंसे फूल झर रहे थे।

वृक्षके नीचे बैठी हुई जुलेखा अमीनासे कहने लगी—"भगवानने जो हम दोनों बहनोंको मौतके हाथसे बचाया है, वह सिर्फ पिताकी हत्याका बदला लेनेके लिये। नहीं तो, और तो कोई सबब ढूँढ़े नहीं मिलता।"

अमीनाने नदीके उस पार सबसे अधिक दूरकी, सबसे अधिक छायामय वनश्रेणीकी ओर देखते हुए कहा—"जीजी, अब उन सब बातोंको मत छेड़ो, बहन! मुझे यह दुनियां अब अच्छी लगती है। मरते हैं तो मरदोंको मार-काट करके मरने दो, मुझे तो यहां कोई तकलीफ़ नहीं मालूम होती।"

जुलेख़ाने कहा—"छिः छिः, अमीना, तू क्या शाहज़ादेकी लड़की है। कहां देहलीका सिंहासन, और कहां यह आराकानके एक धीवरकी झोंपड़ी !"

अमीनाने हँसकर कहा—"जीजी, देहलीके सिंहासनसे मेरे इस बूढ़ेकी झोंपड़ी और इस केलूकी छाया अगर किसी बालिकाको अधिक प्यारी लगे, तो देहलीका सिंहासन उसके लिए एक बूँद आँसू भी न गिरावेगा।"

जुलेख़ाने कुछ अनमने भावसे और कुछ अमीनाको लक्ष्य करके कहा—"हाँ, तुझे तो दोष नहीं दिया जा सकता, तू तब बिलकुल छोटी थी। पर एक बार मनमें सोच तो देख, अब्बाजान तुझे ही सबसे ज़्यादा प्यार करते थे, इसीलिये अपने हाथसे तुझे पानीमें डाल दिया था। उस पिताकी दी हुई मौतसे इस ज़िन्दगीको तू ज़्यादा प्यारी मत समझ। हाँ, अगर बदला ले सकी, तो ज़िन्दगीका कुछ अर्थ भी हो सकता है।"

अमीना चुप्पी साधे बैठी रही, दूरकी ओर देखती रही। परन्तु उसके चेहरेपर यह साफ झलकने लगा कि सब कुछ होते हुए भी बाहरकी इस हवा और पेड़की छायाने, उसके नवयौवन और न-जाने कौनसी एक सुख-स्मृतिने उसे निमग्न कर रखा है।

कुछ देर बाद, एक लम्बी साँस लेकर बोली—"जीजी, तुम ज़रा बैठो। मेरा घरका काम बाकी पड़ा है। मेरे बिना रांधे बूढ़ा भूखा रह जायगा।"

तीसरा परिच्छेद

जुलेखा अमीनाकी हालत सोचकर बड़ी उदास हो गई, चुपचाप बैठी रही। इतनेमें अचानक धममसे किसीके कूदनेकी आवाज़ आई, और पीछेसे आकर किसीने जुलेखाकी आँखें मूँद लीं।

जुलेखाने घबराकर कहा—"कौन है ?"

गलेकी आवाज़ सुनकर, युवक आँखोंपरसे हाथ हटाकर सामने आ खड़ा हुआ—जुलेखाके मुँहकी ओर देखकर बेधड़क बोल उठा—"तुम तो तिन्नी नहीं हो !" मानो जुलेखा अपनेको 'तिन्नी' साबित करनेकी कोशिश कर रही थी, सिर्फ युवककी असाधारण तीक्ष्ण बुद्धिने ही सब भेद खोल दिया हो !

जुलेखा अपनी चादर सम्हालती हुई तेज़ीसे उठ खड़ी हुई, उसकी दोनों आँखोंसे आग बरसने लगी। कड़ककर बोली—"कौन हो तुम ?"

युवकने कहा—"तुम मुझे नहीं पहचानतीं। तिन्नी जानती है। तिन्नी कहाँ है ?"

तिन्नी शोरगुल सुनकर बाहर निकल आई। जुलेखाका रोष और युवकका हतबुद्धि-विस्मित मुख देखकर अमीना कहकहा मारकर हँस उठी।

बोली—"जीजी, उसकी बातपर तुम कुछ ध्यान मत दो। वह आदमी थोड़े ही है। अगर कुछ बेअदबी की हो, तो मैं उसे डाँट दूंगी। दलिया, क्या किया था तुमने ?"

युवकने फौरन जवाब दिया—"पीछेसे आकर आँखें मूँद ली थीं। मैंने जाना कि तिन्नी है, पर वह तो तिन्नी नहीं है!"

तिन्नी सहसा दुःसह क्रोध प्रकट करती हुई बोली—"फिर! छोटे मुंह बड़ी बात! कब तुमने तिन्नीकी आँखें मींची थीं? बड़ी हिम्मत है!"

युवकने कहा—"आँखें मीचनेमें ऐसी क्या हिम्मतकी ज़रूरत है; हाँ, पहलेकी आदत चाहिये। पर सच कहता हूं तिन्नी, आज ज़रा डर-सा गया था।"

कहकर निगाह बचाकर जुलेख़ाकी ओर उँगलीसे इशारा करके अमीनाके मुँहकी तरफ़ देखता हुआ मुसकराने लगा।

अमीनाने कहा—"नहीं, तुम बड़े असभ्य हो। शाहज़ादीके सामने खड़े होने लायक नहीं हो। तुमको तमीज़ सिखानेकी ज़रूरत है। देखो, इस तरह सलाम करो।"

कहकर अमीनाने अपनी यौवन-मंजरित देह-लताको बड़ी नज़ाकतके साथ झुकाकर जुलेख़ाको सलाम किया। युवकने बड़ी मुश्किलसे उसकी बहुत ही अधूरी नकल की।

बोली—"इस तरह तीन क़दम पीछे हट आओ।"

युवक पीछे हट आया।

"फिर सलाम करो।"

फिर सलाम किया।

इसी तरह पीछे हटाते-हटाते, सलाम कराते-कराते अमीना युवकको झोंपड़ीके दरवाज़े तक ले गई।

बोली—"भीतर जाओ।"

युवक भीतर चला गया।

अमीनाने, बाहरसे घरका दरवाज़ा बन्द करके कहा—"ज़रा घरका काम करो। देखो, आँच न बुझने पावे।" कहकर जीजीके पास जाकर बैठ गई।

बोली—"जीजी, गुस्सा मत हो बहन, यहाँके आदमी ही ऐसे हैं। मेरा तो जी उकता गया है।"

परन्तु अमीनाके मुँहपर या उसके व्यवहारमें इसका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता, बल्कि बहुतसी बातोंमें उसका यहांके आदमियोंके प्रति अनुचित पक्षपात ही नज़र आता है।

जुलेखाने शक्ति-भर गुस्सा दिखाकर कहा—"सचमुच, अमीना, तेरे बर्तावसे मैं तो दंग रह गई हूं। एक बाहरका युवक आकर देहसे हाथ छुआवे, यह तो उसकी बड़ी भारी हिमाक़त है!"

अमीनाने बहनकी हाँ-में-हाँ मिलाकर कहा—"हाँ, देख तो सही! अगर कोई बादशाह या नवाबका लड़का ऐसा बेहूदा सलूक करता, तो उसे बेआबरू करके निकाल बाहर करती।"

जुलेखाकी भीतरकी हँसी रोके न रुकी, हँसकर बोली—"सच-सच कहना अमीना, तूने जो कहा था कि दुनियाँ तुझे बड़ी अच्छी लगती है, सो क्या इसी असभ्य युवकके लिये?"

अमीनाने कहा—"अच्छा तो सच-सच कह दूँ, वह मेरी बड़ी मदद करता है। फल-फूल तोड़ देता है, शिकार कर लाता है, किसी एक कामके लिये बुलाओ, तो दौड़ा आता है। बहुत बार सोचती हूं कि उसे

डाँट-डपटकर ठीक करूँ, पर सब कोशिशें फ़िज़ूल जाती हैं। अगर खूब गुस्सा होकर कहूं—दलिया, तुमपर मैं बड़ी नाखुश हूं,—तो वह मुँहकी तरफ़ देखता और बड़े मज़ेसे चुपचाप मुसकराता रहता है। इस देशकी हँसी ही शायद ऐसी होती होगी। दो-चार थप्पड़-मुक्के लगा दो, बड़ा खुश होता है; सो भी अजमाकर देख लिया है। देखो न, घरमें बन्द कर दिया है—बड़े आनन्दमें है। दरवाज़ा खोलते ही देखोगी, आँखें मुँह लाल करके बड़ी मौजसे चूल्हा फूंक रहा होगा। बताओ, इससे कैसे बस चले! मैं तो हैरान हो चुकी हूं।"

जुलेखाने कहा—"मैं कोशिश करूँगी।"

अमीनाने हँसते हुए विनयके साथ कहा—"ना बहन, तेरे पैरों पड़ती हूं। अब तू उससे कुछ मत कहना।"

यह बात अमीनाने इस ढंगसे कही, मानो वह युवक अमीनाका बड़ी साधसे पाला हुआ हिरना हो, अभी तक उसका जंगली स्वभाव दूर नहीं हुआ है—कहीं दूसरे किसी आदमीको देखकर भड़क न जाय, भाग न जाय, ऐसी आशंका है।

इतनेमें धीवरने आकर कहा—"आज दलिया नहीं आया, तिन्नी?"

"आया तो है।"

"कहां गया?"

"वह बड़ा ऊधम मचा रहा था, इसलिये उसे घरमें बन्द कर दिया है।"

बूढ़ा कुछ सोचमें पड़ गया, बोला—"अगर हैरान करे, तो ज़रा सह लिया कर। कम उमरमें सभी ऐसे ऊधमी हुआ करते हैं। ज्यादा

तंग मत किया कर। दलियाने कल एक 'थलू' देकर मुझसे तीन मछलियां खरीदी थीं।" ('थलू' का अर्थ है 'मोहर')

अमीना बोली—"फिकिर मत करो बाबा, आज मैं उससे दो थलू वसूल करा दूँगी, और एक भी मछली न देनी पड़ेगी।"

बूढ़ा अपनी पाली-पोसी लड़कीमें, इतनी कम उम्रमें ऐसी चतुराई और कमाऊ-बुद्धि देखकर बड़ा खुश हुआ। उसके सिरपर प्यारसे हाथ फेरकर चला गया।

चौथा परिच्छेद

आश्चर्य तो इस बातका है कि दलियाके आने-जानेके सम्बन्धमें जुलेखाको भी धीरे-धीरे अब कोई आपत्ति नहीं रही। विचार कर देखा जाय, तो इसमें आश्चर्य कुछ नहीं। कारण, जैसे नदीके एक ओर स्रोत है और दूसरी ओर किनारा, उसी प्रकार स्त्रियोंके हृदयावेग और लोकलज्जा है। परन्तु सभ्य-समाजके बाहर आराकानके प्रान्तरमें—यहां लोक कहां, जिसकी लज्जा हो!

यहां तो सिर्फ ऋतुकी पर्यायोंमें वृक्ष मंजरित होते हैं, और सामनेकी नीली नदी वर्षामें स्फीत, शरत्में स्वच्छ और ग्रीष्मऋतुमें क्षीण होती रहती है, पक्षियोंके उच्छ्वसित कण्ठस्वरमें समालोचनाका लेशमात्र भी नहीं है। दक्षिणकी पवन बीच-बीचमें उस पारके गांवोंसे मानवचक्रकी गुंजनध्वनि बहा लाती है, पर कानाफूँसी नहीं लाती।

गिरे हुए मकानपर क्रमशः जैसे घास पैदा हो जाती है, वैसे ही यहां भी कुछ दिन रहनेसे प्रकृतिके गुप्त आक्रमणोंसे लौकिकताकी मानव-निर्मित दृढ़ भित्ति क्रमशः अलक्षित रूपसे टूटकर गिर जाती है, और चारों ओरसे प्राकृतिक जगत्‌के साथ मिलकर सब एकाकार हो जाता है। दो समयोग्य नर-नारीके मिलन-दृश्यके देखनेमें रमणीको जितना आनन्द आता है, और किसीमें उतना नहीं। इतना रहस्य, इतना सुख, इतना बड़ा अथाह कौतूहलका विषय उसके लिए और कुछ भी नहीं हो सकता। अतएव इस असभ्य कुटीरमें, निर्जन दरिद्रताकी छायामें, जब जुलेखाका कुल-गर्व और लोक-मर्यादाका भाव अपने-आप शिथिल हो आया, तब उस फूलोंसे भरे हुए कैलू-वृक्षकी छायामें अमीना और दलियाके मिलनके इस मनोहर खेलके देखनेमें उसे बड़ा आनन्द आने लगा।

शायद उसके भी तरुण हृदयकी एक अपरितृप्त आकांक्षा जाग उठती और उसे सुखदुखमें चंचल कर देती थी। अन्तमें ऐसा हो गया कि यदि किसी दिन युवकके आनेमें देर हो जाती, तो अमीना जैसे उत्कण्ठित हो उठती, जुलेखा भी वैसे ही आग्रहके साथ प्रतीक्षा करती, और दोनोंके एकत्र होनेपर चित्रकार जैसे अपने सद्य-समाप्त चित्रको कुछ दूरसे देखता है, वैसे ही स्नेहके साथ मुसकराती हुई देखती रहती, किसी-किसी दिन मौखिक युद्ध भी करती, छलसे डाँट-डपट देती, अमीनाको घरमें बन्द करके युवकके मिलनावेगमें बाधा डालती।

सम्राट् और अरण्यमें एक प्रकारका सादृश्य है। दोनों ही स्वाधीन हैं, दोनों ही अपने राज्यके एकाधिपति हैं, दोनों ही को किसीका नियम

मानकर नहीं चलना पड़ता। दोनों ही में प्रकृतिका एक स्वाभाविक बड़प्पन और सरलता है। जो मध्यम श्रेणीके हैं, जो रात-दिन लोक-शास्त्रके अक्षर मिलाकर जीवन बिताते हैं, वे ही कुछ अलग तरहके होते हैं। वे ही बड़ोंके सामने दास, छोटोंके लिये प्रभु और ऐरे-गैरे स्थानमें बिलकुल 'किंकर्तव्य-विमूढ़' हो जाते हैं। असभ्य दलिया प्रकृति-सम्राज्ञीका उच्छृंखल लड़का है; शाहज़ादियोंके सामने उसे कोई संकोच न था, और शाहज़ादियां भी उसे बराबरीका आदमी समझ सकती थीं। दलिया हँसमुख, सरल, कौतुकप्रिय, सभी अवस्थाओंमें निर्भीक और निःसंकोच प्रकृतिका युवक है; चरित्रमें दरिद्रताका कोई लक्षण ही न था!

परन्तु इन सब खेलोंमें एकाएक जुलेख़ाका हृदय हाय-हाय कर उठता, सोचती—शाहज़ादीकी ज़िन्दगीका क्या यही नतीजा है!

एक दिन प्रभातमें दलियाके आते ही जुलेख़ाने उसका हाथ मसलकर कहा—"दलिया, यहांके राजाको दिखा सकते हो?"

"दिखा सकता हूँ। क्यों? बताओ तो सही?"

"मेरे पास एक छुरा है, उसे मैं उसके सीनेमें भोंकना चाहती हूँ।"

पहले दलिया कुछ दंग-सा रह गया। फिर जुलेख़ाके हिंसाप्रखर चेहरेकी ओर देखकर उसका सारा मुँह हँसीसे भर गया; मानो इतनी बड़ी मजेकी बात उसने पहले कभी सुनी ही न हो!—अगर दिल्लगी कहो तो यही है, शाहज़ादीके लायक़ है। कुछ बात नहीं, चीत नहीं, पहली ही मुलाक़ातमें एक छुरेका आधा हिस्सा एक ज़िन्दा

बादशाहके सीनेमें भोंकनेपर, इस प्रकारके बिलकुल अन्तरंग व्यवहारसे, बादशाहके होश-हवास कैसे फ़ाख़्ता हो जायँगे, यही चित्र क्रमशः उसके मनमें उदित होने लगा, उसका नीरव कौतुक-हास्य रह-रहकर अट्टहास्यमें परिणत होने लगा।

पाँचवाँ परिच्छेद

उसके दूसरे ही दिन रहमत शेख़ने जुलेख़ाको गुप्त चिट्ठी लिखी—

"आराकानके नये राजाको पता लग गया है कि तुम दोनों बहनें धीवरकी झोंपड़ीमें हो। छिपकर अमीनाको उन्होंने देख भी लिया है, वे उसपर मोहित हो गये हैं। उसके साथ ब्याह करनेके लिये शीघ्र ही वे उसे महलमें लानेकी तय्यारियां कर रहे हैं। बदला चुकानेका ऐसा उमदा मौक़ा फिर न मिलेगा!"

तब जुलेख़ाने मज़बूतीसे अमीनाका पहुँचा थामकर कहा—"ख़ुदाकी मरज़ी साफ़ दीख रही है। अमीना, अब तेरे जीवनमें कर्तव्य-पालनका समय आ गया है, अब हँसी-खेल अच्छा नहीं लगता।"

दलिया मौजूद था, अमीनाने उसके मुंहकी तरफ़ देखा; देखा, वह कौतुक-पूर्ण हँसी हँस रहा है।

उसकी हँसी देखकर अमीनाका हृदय विदीर्ण हो गया, बोली—"जानते हो दलिया, मैं बेगम बनने जा रही हूँ!"

दलियाने हँसकर कहा—"सो तो थोड़ी ही देरके लिए न!"

अमीनाने पीड़ित, विस्मित चित्तसे मन-ही-मन सोचा—'सचमुच यह जंगलका हिरन है, इसके साथ आदमियों जैसा बरताव करना अपना ही पागलपन है।'

अमीनाने दलियाको और भी ज़रा सचेत करनेके लिए कहा—"बादशाहको मारकर अब क्या मैं लौट सकती हूँ!"

दलियाने इस बातको संगत समझकर कहा—"हाँ, लौटना तो मुश्किल ही है।"

अमीनाकी सारी अन्तरात्मा बिलकुल म्लान हो गई।

जुलेखाकी ओर मुड़कर, लम्बी साँस लेकर बोली—"जीजी, चलो, मैं तय्यार हूँ।"

फिर दलियाकी ओर मुड़कर, बिंधे हुए अन्तरसे, हँसीमें बोली—"बेगम बनकर मैं पहले तुम्हें ही बादशाहके विरुद्ध षड्यन्त्रमें शामिल होनेके अपराधमें सज़ा दिलाऊँगी! उसके बाद फिर जो कुछ करना होगा, करूँगी।"

सुनकर दलियाको बड़ा कौतुक हुआ, मानो इस बातके कार्यरूपमें परिणत होनेपर उसे बहुत-कुछ आनन्दकी सामग्री मिलेगी।

छठा परिच्छेद

घुड़सवार, हाथी, पियादे, बाजे, झंडियों और रोशनियोंकी धूमधामसे धीवरका घर-द्वार टूटनेकी नौबत आ पहुँची। राजमहलसे सोनेकी दो जड़ाऊ पालकियाँ आई हैं।

अमीनाने जुलेखाके हाथसे छुरा ले लिया। वह उसकी हाथी-दाँतकी बनी हुई मूठको बहुत देर तक देखती रही। उसके बाद, चोली उघाड़कर, अपनी छातीपर एक बार उसकी धारकी परीक्षा कर देखी। जीवन-कलीके वृन्तके पास छुरेको एक बार छुआ लिया। फिर उसे म्यानमें रखकर चोलीके अन्दर छिपा लिया।

बड़ी इच्छा थी, इस मरण-यात्राके पहले एक बार दलियासे मिल लेती, पर कलसे वह लापता है! दलिया उस दिन जो हँस रहा था, उसके अन्दर क्या अभिमानकी ज्वाला सुलग रही थी?

पालकीमें बैठनेसे पहले अमीनाने अपने बाल्यकालके आश्रयको आँसुओंके भीतरसे एक बार देखा—अपने उस घरके पेड़को, अपनी उस घरकी नदीको। धीवरका हाथ थामकर वह काँपती हुई ज़बानसे बोली—"बाबा, अब मैं चली।—तिन्नी तो जाती है, अब तेरी घर-गिरस्ती कौन सम्हालेगा?"

बूढ़ा सहसा बालककी तरह रो उठा।

अमीनाने कहा—"बाबा, अगर दलिया यहां आवे, तो उसे यह अंगूठी दे देना। कहना, तिन्नी जाते वक्त दे गई है।"

इतना कहकर जल्दीसे वह पालकीपर बैठ गई। बड़ी धूम-धामके साथ पालकी रवाना हो गई। अमीनाकी झोंपड़ी, नदीका किनारा, केलू वृक्षके नीचेका स्थान,—सब अन्धकारमय निस्तब्ध जनशून्य हो गया।

यथासमय दोनों पालकियोंने तोरणद्वार पारकर अन्तःपुरमें प्रवेश किया। दोनों बहनें पालकीसे निकलकर बाहर आईं।

अमीनाके मुँहपर हँसी न थी, आँखोंमें आँसुओंका चिह्न तक न था। जुलेखाका मुँह फीका—सफ़ेद—पड़ गया था। कर्तव्य जब तक दूर था, तब तक उसके उत्साहकी तीव्रता थी, अब उसने कम्पित हृदयसे—व्याकुल स्नेहसे—अमीनाको छातीसे लगा लिया। मन-ही-मन कहने लगी—'नये प्रेमके डंठलसे तोड़कर इस खिलते हुए फूलको किस रक्त-स्रोतमें बहाने ले जा रही हूँ!'

परन्तु अब सोचनेका समय नहीं है। परिचारिकाओं द्वारा लाई हुई, सैकड़ों-हज़ारों बत्तिओंकी अनिमेष तीव्र दृष्टियोंके बीचसे, दोनों बहनें स्वप्नाहतकी तरह चलने लगीं, अन्तमें शयनागारके दरवाज़ेके पास क्षण-भरके लिए ठहरकर अमीनाने जुलेख़ासे कहा—"जीजी!"

जुलेख़ाने अमीनाको दृढ़ आलिङ्गनमें बाँधकर चुम्बन किया।

दोनों धीरे-धीरे भीतर घुसीं।

देखा—शाही पोशाक पहने कमरेके बीचमें पलंगपर मशनदके सहारे बादशाह बैठे हुए हैं। अमीना बड़े संकोचके साथ दरवाज़ेके पास खड़ी रही।

जुलेखाने आगे बढ़कर बादशाहके पास जाकर देखा—बादशाह चुपचाप बड़े कौतुकसे हँस रहा है!

जुलेख़ा बोल उठी—"दलिया!"

अमीना मूर्छित हो गई।

दलिया उठकर उसे घायल चिरैयाकी तरह गोदमें उठाकर पलंगके पास ले गया। होश आनेपर अमीनाने चोलीके अन्दरसे छुरा

निकालकर बीजीके मुँहकी ओर देखा। बीजीने दलियाकी मुँहकी ओर देखा। दलिया चुपचाप मुसकराता हुआ दोनोंकी ओर देखता रहा। छुरी भी अपनी म्यानमेंसे जरासा मुंह निकालकर इस तमाशेको देखकर चमचमाकर हँसने लगी।

(माघ, १६४८)

कंकाल

हम तीनों बाल्य-संगी जिस घरमें सोते थे, उसके बगलके कमरेमें दीवालपर एक नर-कंकाल लटका रहता था। रातको हवासे उसकी हड्डियां खड़खड़ाया करती थीं। दिनको हमें उन हड्डियोंको हिलाना पड़ता था। हम लोग तब पण्डितजीके पास 'मेघनाद-वध' और कैम्बेल स्कूलके एक विद्यार्थीसे अस्थि-विद्या पढ़ा करते थे। हमारे अभिभावक चाहते थे कि हम लोगोंको वे सहसा सर्वविद्यामें पारदर्शी कर डालें। उनका यह अभिप्राय कहां तक सफल हुआ, यह बात जो हमें जानते हैं, उनके सामने प्रकट करना फ़िजूल है, और जो नहीं जानते, उनसे छिपाना ही अच्छा है।

उसके बाद, बहुत समय बीत चुका है। इस बीचमें उस घरसे कंकाल और हम लोगोंके माथेसे अस्थि-विद्या निकलकर न जाने कहां चली गई, कुछ पता नहीं।

थोड़े दिन हुए, एक दिन रातको किसी कारणसे अन्यत्र स्थानाभाव

होनेके कारण मुझे उसी कमरेमें सोना पड़ा। आदत न होनेसे नींद न आई। करवट बदलते-बदलते गिरजाकी घड़ीमें बड़े-बड़े घंटे करीब-करीब सब बज गये। इतनेमें घरके एक कोनेमें जो तेलका दिआ जल रहा था, वह पांचएक मिनट तक बुत-बुत करता हुआ बिलकुल बुझ गया। इससे कुछ पहले हमारे घरपर दो-एक दुर्घटनाएँ हो चुकी थीं। इसीसे इस दिआके बुझते ही मृत्युकी बात याद आ गई। मालूम हुआ, यह जो आधी रातके वक्त एक दीपशिखा चिरअन्धकारमें मिल गई, प्रकृतिके लिये जैसी यह है, वैसी ही मनुष्यकी छोटी-छोटी प्राणशिखाएँ हैं, जो कभी दिनमें, कभी रातमें सहसा बुझकर विस्मृत हो जाती हैं।

क्रमशः उस कंकालकी बात याद आई। उसके जीवित कालके विषयमें कल्पना करते-करते सहसा मालूम हुआ, एक चेतन पदार्थ अन्धकारमय घरमें दीवाल टटोलता हुआ मेरी मशहरीके चारों तरफ घूम रहा है, उसकी घनी-घनी साँस चल रही है। न जाने वह क्या ढूँढ़ रहा है, पर पाता नहीं, और तेज़ीके साथ घर-भरमें फिर रहा है। मैंने निश्चित समझ लिया कि यह सब-कुछ मेरे निन्द्राहीन गरमाये हुए मस्तिष्ककी कल्पना है। और मेरे ही माथेमें भनाता हुआ जो खूब दौड़ रहा है, वही पैरोंकी आहटकी तरह सुन पड़ता है। परन्तु फिर भी रोंगटे खड़े हो उठे। ज़बरदस्ती इस फिज़ूलके डरको दूर करनेके लिए मैं बोल उठा—"कौन है!" पदशब्द मेरी मशहरीके पास आकर थम गया, और एक उत्तर सुन पड़ा—"मैं हूं; मेरा वह कंकाल कहां गया? उसे ढूंढने आई हूं।"

मैंने सोचा कि अपनी काल्पनिक सृष्टिके आगे भय दिखाना कुछ नहीं,—मैंने गाव-तकियेसे जोरसे चिपटकर चिर-परिचितकी भाँति सहज स्वरमें कहा—"वाह ! आधी रातके वक्त काम तो खूब ढूँढ़ निकाला है ! अब उस कंकालसे तुम्हें क्या मतलब ?"

अँधेरेमें, मशहरीके बहुत ही पाससे उत्तर मिला—"खूब कही ! अरे, मेरी छातीके हाड़ तो उसीमें थे। मेरा छब्बीस वर्षका यौवन तो उसीके चारों ओर विकसित हुआ था,—एक बार देखनेकी इच्छा नहीं होती ?"

मैंने उसी वक्त कहा—"हाँ, बात तो ठीक है। तो तुम ढूँढ़ो—जाओ। मैं ज़रा सोनेकी कोशिश करूँ।"

उसने कहा—"तुम अकेले ही हो क्या ?—तो ज़रा बैठ जाऊँ। ज़रा गप्पें होने दो। पैंतीस वर्ष पहले मैं भी आदमियोंके पास बैठकर आदमियोंकी तरह गप्पें किया करती थी। ये पैंतीस वर्ष मैंने सिर्फ श्मशानकी हवामें हू-हू करते हुए बिताये हैं। आज तुम्हारे पास बैठकर, और एक बार, आदमियोंकी तरह गप्पें कर लूँ।"

मुझे मालूम हुआ कि मेरी मशहरीके पास आकर कोई बैठ गया। कोई उपाय न देख मैंने ज़रा उत्साहके साथ ही कहा—"हाँ, यही ठीक है। ऐसी कोई कहानी कहो, जिससे तबियत खुश हो जाय।"

उसने कहा—"सबसे बढ़कर मज़ेकी बात सुनना चाहते हो, तो मैं अपने जीवनकी बातें सुनाती हूं,—सुनो।"

गिरजेकी घड़ीमें टन-टन दो बजे।

"जब मैं मनुष्य थी और छोटी थी, तब एक आदमीसे मैं यमकी

तरह डरती थी। वे थे मेरे पति। मछलीको कांटेमें फँसा लेनेपर वह जैसे फड़फड़ाती है, मैं भी वैसे ही तड़पती थी।—मुझे ऐसा मालूम होता था, मानो कोई एक बिलकुल अपरिचित जीव मुझे कांटेमें फँसाकर मेरे स्निग्ध-गम्भीर जन्म-जलाशयसे खींचकर लिये जा रहा है—किसी भी तरह उसके हाथसे छुटकारा नहीं। विवाहके दो मास बाद ही मेरे पतिकी मृत्यु हो गई। घरवालों और नाते-रिश्तेदारोंने मेरी तरफ़से बहुत-कुछ विलाप-परिताप किया। मेरे ससुरने बहुतसे लक्षण मिलाकर साससे कहा—'शास्त्रोंमें जिसे विष-कन्या कहा है, यह लड़की वही है।' यह बात मुझे अभी तक बिलकुल स्पष्ट याद है।—सुनते हो, कैसी लग रही है?"

मैंने कहा—"अच्छी है। कहानीका प्रारम्भ तो बड़े मज़ेका है।"

"तो सुनो। आनन्दसे मायके लौट आई। क्रमशः उमर बढ़ने लगी। लोग मुझसे छिपाते थे, पर मैं खुद अच्छी तरह जानती थी कि मुझ जैसी रूपवती जहां-तहां नहीं मिलती। क्यों, तुम्हारी क्या राय है?"

"हो सकता है। लेकिन मैंने तो तुम्हें कभी देखा नहीं।"

"देखा नहीं! क्यों? मेरा वह कंकाल! हि-हि! हि-हि! मैं मज़ाक कर रही हूं! तुम्हारे सामने मैं कैसे साबित करूँ कि उन दोनों आँखोंकी खोखली हड्डियोंके बीचमें कमान-सी खिंची हुई काली भौंरा-सी बड़ी-बड़ी दो आँखें थीं, और रंगीन ओठोंपर जो मन्द-मन्द मुसकान थी, उसकी अब इन उघड़े हुए दाँतोंकी विकट हँसीके साथ किसी तरह तुलना ही नहीं हो सकती; मैं कैसे समझाऊँ कि उन्हीं

इनी-गिनी लम्बी सूखी हड्डियोंके ऊपर इतना लालित्य, यौवनकी इतनी कठिन-कोमल सुघड़ परिपूर्णता प्रतिदिन प्रस्फुटित होती रहती थी कि तुमसे कहनेमें मुझे हँसी भी आती है और क्रोध भी। मेरे उस शरीरसे अस्थि-विद्या सीखी जा सकती है, यह बात उस ज़मानेके बड़े-बड़े डाक्टरोंके भी दिमाग़में न आती थी। मुझे याद है, एक डाक्टरने अपने किसी विशिष्ट मित्रसे मुझे कनक-चम्पा कहा था। उसके मानी यह थे कि दुनियाँके और सब आदमी अस्थि-विद्या और शरीरतत्त्वके दृष्टान्तस्थल थे,—सिर्फ मैं ही सौन्दर्यरूपी फलके समान थी। कनक-चम्पाके भीतर क्या कोई कंकाल होता है?"

"मैं जब चलती थी, तो मुझे मालूम होता था कि एक हीरेको हिलानेसे उसके चारों ओर जैसे प्रकाश चमचमाता है, मेरी देहकी प्रत्येक गतिमें भी वैसी ही सौन्दर्यकी भंगी मानो अनेक स्वाभाविक हिल्लोलोंमें चारों ओर बिखरी पड़ती है। कभी-कभी मैं बहुत देर तक अपने हाथ आप देखा करती,—संसारके समस्त उद्धत पौरुषके मुंहमें लगाम डालकर मधुरतासे उन्हें वशमें कर सकते थे—ऐसे हाथ थे! सुभद्रा जब अर्जुनको लेकर बड़े दर्पके साथ अपने विजय-रथको विस्मित तीन-लोकके बीचमें होकर चला ले गई थीं, तब उनके शायद ऐसी ही दो अस्थूल सुडौल भुजाएँ, आरक्त हथेलियां और लावण्य-शिखाके समान उँगलियां थीं।"

"परन्तु मेरे उस निर्लज्ज, निरावरण, निराभरण, चिरवृद्ध कंकालने तुम्हारे सामने मेरे नामसे झूठी साक्षी दी है। मैं तब बेबस थी, कुछ बोल न सकती थी। इसीलिए संसार-भरमें मेरा सबसे ज्यादा क्रोध

तुम्हींपर है। इच्छा होती है, अपने उस सोलह वर्षके जीवित, यौवनके तापसे उत्तप्त आरक्तिम रूपको एक बार तुम्हारी आँखोंके सामने रख दूँ, बहुत दिनोंके लिए तुम्हारी आँखोंकी नींद छुटा दूँ, तुम्हारी अस्थि-विद्याको अस्थिर करके देश-निकाला दे दूँ।"—

मैंने कहा—"तुम्हारी देह अगर होती, तो मैं देह छूकर कहता कि उस विद्याका लेशमात्र भी अब मेरे मस्तिष्कमें नहीं है। और तुम्हारा वह भुवन-मोहन पूर्ण यौवनका रूप रजनीके इस अन्धकार-पटपर आज्वल्यमान होकर प्रस्फुटित हो उठा है। बस, अब ज़्यादा मत कहलवाओ।"

"मेरी कोई सखी-सहेली न थी। भइयाने प्रतिज्ञा कर ली थी, व्याह न करेंगे। अन्तःपुरमें सिर्फ़ मैं ही अकेली थी। बगीचेमें पेड़के नीचे अकेली बैठी हुई मैं सोचा करती—तमाम दुनियाँ मुझसे ही प्रेम करती है, आकाशके सारे तारे मुझे ही देखा करते हैं, पवन छलसे बार-बार दीर्घ-निःश्वासके रूपमें मेरे बगलमें होकर निकल जाती है; और जिस घासपर मैं पैर फैलाकर बैठी हूं, उसे यदि चेतना होती, तो वह भी फिरसे अचेतन हो जाती। मुझे मालूम होता,—संसारके समस्त युवा पुरुष उस घासके रूपमें दल बाँधकर चुपचाप मेरे पैरोंके पास आकर खड़े हैं। हृदयमें बिना कारण न-जाने कैसी एक वेदनाका अनुभव होता!"

"भइयाके मित्र शशिशेखर जब मेडिकल कालेजसे पास होकर आये, तो वे ही हमारे घरके डाक्टर हुए। मैंने उन्हें पहले ओटमेंसे बहुत बार देखा है। भइया बड़े अजीब आदमी थे—दुनियाँको मानो वे अच्छी तरह देख न सकते थे। संसार उनके लिये मानो काफी

खुला हुआ न था—इसलिए हटते-हटते वे बिल्कुल किनारेपर पहुंच गये थे।"

"उनके मित्रोंमें बस एक शशिशेखर ही थे। इसलिए बाहरके युवकोंमेंसे मैं सिर्फ शशिशेखरको ही हमेशा देखती थी। और जब मैं सन्ध्याके समय फूलके पेड़के नीचे सम्राज्ञीका आसन ग्रहण करती, तब संसारकी सम्पूर्ण पुरुष-जाति शशिशेखरकी मूर्ति धारण कर मेरे चरणोंमें आकर आश्रय लेती।—सुन रहे हो? कहानी कैसी मालूम देती है?"

मैंने एक उसास लेकर कहा—"मालूम होता है, शशिशेखर होकर पैदा होता, तो अच्छा रहता।"

"पहले पूरी सुन तो लो।—एक दिन, बदलीका दिन था, मुझे बुखार चढ़ा। डाक्टर देखने आये। यही पहली मुलाकात थी।"

"मैं खिड़कीकी तरफ़ मुंह किये थी, जिससे सन्ध्याकी लाल आभा मुंहपर पड़े और मुंहकी विवर्णता दूर हो जाय। डाक्टरने जब घरमें घुसते ही मेरे मुंहकी ओर एक बार देखा, तब मैंने भी मन-ही-मन अपनेको डाक्टर मानकर कल्पनासे अपने मुंहकी ओर देखा। उस सन्ध्याके गुलाबी प्रकाशमें नरम तकियेपर कुछ मुरझाया हुआ और कोमल फूलके समान वह मुख था; असंयमित घुँघराले बाल ललाटपर बिखर रहे थे और लज्जासे झुके हुए बड़े-बड़े नेत्रोंके पल्लव कपोलपर छाया डाल रहे थे।"

"डाक्टरने नम्र मृदु स्वरमें भइयासे कहा—'एक बार हाथ देखना होगा'।"

"मैंने फर्दके भीतरसे थका हुआ सुगोल हाथ निकाल दिया। एक बार हाथकी ओर निहारकर देखा,—यदि नीले रंगकी काँचकी चूड़ी पहन लेती, तो और भी अच्छा लगता। रोगीका हाथ थामकर नाड़ी देखनेमें डाक्टरकी ऐसी चंचलता मैंने पहले कभी नहीं देखी। उन्होंने अत्यन्त असंलग्नभावसे काँपती हुई उँगलियोंसे नाड़ी देखी। वे मेरे बुखारकी गरमी समझ गये, मैंने भी उनकी अन्तरकी नाड़ी कैसी चल रही है, इसका कुछ-कुछ आभास पाया। क्यों, विश्वास नहीं होता ?"

मैंने कहा—"अविश्वासका कोई कारण तो नहीं देखता—आदमीकी नाड़ी हर वक्त एकसी नहीं चलती।"

"क्रमशः और भी दो-चार बार रोगी और आरोग्य होनेके बाद मैंने देखा—मेरी उस सन्ध्याकालकी मानस-सभामें संसारकी कोटि-कोटि पुरुष-संख्या अत्यन्त कम होते-होते अन्तमें वह एकपर आकर ठहरी, मेरी दुनियाँ करीब-करीब सूनी-सी हो गई। संसारमें सिर्फ एक डाक्टर और एक रोगी बच रहा।"

"मैं छिपकर शामके वक्त एक बसन्ती रंगकी साड़ी पहनती, अच्छी तरह जूड़ा बाँधती, उसपर एक मोतियेकी माला लपेटती, फिर एक दर्पण लेकर बगीचेमें जा बैठती।"

"क्यों ! अपनेको देख-देखकर क्या तृप्ति नहीं होती ! सचमुच नहीं होती, क्योंकि मैं तो खुद अपनेको नहीं देखती थी। मैं तब अकेली बैठकर दो हो जाती थी। मैं तब डाक्टर बनकर अपनेको देखती थी, मोहित हो जाती थी, प्रेम करती थी, आदर करती थी,

फिर भी हृदयके भीतर एक दीर्घ-निःश्वास सन्ध्याकी हवाकी तरह हू-हू कर उठता था।"

"तबसे मैं अकेली नहीं थी; जब चलती थी, नीचेको निगाह करके निरख-निरखकर देखती थी कि पैरोंकी उँगलियाँ ज़मीनपर कैसे पड़ती हैं; और सोचती थी कि इन पैरोंका रखना हमारे नवीन परीक्षोत्तीर्ण डाक्टरको कैसा लगता होगा। दोपहरको जंगलेके बाहर धू-धू करता रहता, कहीं भी शोर-गुल नहीं, बीच-बीचमें एक-आध चील बहुत दूर आकाशमें चीं-चीं करती हुई उड़ जाती; और हमारे बगीचेकी चहारदीवारीके बाहर खिलौनेवाला गानेके स्वरमें 'चहिये खिलौना चहिये, चूड़ी चहिये' बोल जाता, मैं तब अपने हाथसे बिछौना करके उसपर एक धुली हुई चद्दर बिछाकर सो जाती; एक उघड़ी हुई बाँह कोमल बिछौनेपर मानो अनादरसे रखकर सोचती, इस हाथको इस तरह रखते हुए मानो किसीने देख लिया, मानो किसीने दोनों हाथोंसे उठा लिया, मानो किसीने इसकी गुलाबी हथेलीपर एक चुम्बन रख दिया, और मानो धीरे-धीरे वह लौटा जा रहा है।—मान लो, यहींपर कहानी अगर ख़तम हो जाय, तो कैसी रहे?"

मैंने कहा—"अच्छी ही रहे। ज़रा अधूरी तो रह जायगी, पर उसे पूरी कर लेनेमें बची हुई रात मज़ेमें कट जायगी।"

"परन्तु इससे कहानी बहुत गम्भीर हो जायगी। इसका उपहास फिर कहां रहेगा? इसके भीतरका 'कंकाल' अपने सारे दाँत किटकिटाता हुआ कहां दिखाई देगा?—"

"हाँ, फिर उसके बाद सुनो।—ज़रा प्रैक्टिस बढ़ते ही डाक्टरने

हमारे मकानके नीचे एक दवाखाना खोल दिया। तब मैं उनसे कभी-कभी हँसी-हँसीमें दवाकी बात, ज़हरकी बात, कैसे आदमी आसानीसे मर सकता है, ये सब बातें पूछती रहती। डाक्टरी-विषयोंमें डाक्टरका मुंह खुल जाता। सुनते-सुनते मौत मानो परिचित घरके आदमीकी तरह हो गई। प्रेम और मृत्यु, मुझे सिर्फ दो ही चीज़ें दुनियामें दीखने लगीं।"

"मेरी कहानी क़रीब-क़रीब ख़तम होनेपर है—अब ज़्यादा नहीं है।"

मैंने मुलायम स्वरमें कहा—"रात भी क़रीब-क़रीब ख़तम हो आई।"

"कुछ दिनसे देखा कि डाक्टर साहब बड़े अनमने-से रहते हैं, और मेरे सामने तो बहुत ही झेंपते हैं। एक दिन देखा कि वे कुछ अधिक ठाट-बाटसे सज-धजकर भइयाके पास आये हैं उनसे बग्घी माँगने, रातको कहीं जायँगे।"

"मुझसे रहा न गया। भइयाके पास जाकर बातों-ही-बातोंमें मैंने पूछा—'भइया, डाक्टर साहब आज बग्घी लेकर कहाँ जा रहे हैं?'"

"संक्षेपमें भइयाने कहा—'मरने'।"

"मैंने कहा—'सची बताओ न भइया'।"

"उन्होंने पहलेकी अपेक्षा कुछ खुलासा करके कहा—'ब्याह करने'।"

"मैंने कहा—'सचमुच!'—कहकर मैं खूब हँसने लगी।"

"धीरे-धीरे मालूम हुआ कि इस विवाहमें डाक्टरको बारह हज़ार रुपये मिलेंगे।"

"परन्तु मुझसे यह बात छिपाकर मुझे अपमानित करनेका क्या मतलब? मैंने क्या उनके पैरों पड़कर कहा था कि ऐसा काम करनेसे मैं छाती फाड़कर मर जाऊँगी? पुरुषोंका विश्वास नहीं! दुनियामें मैंने सिर्फ एक ही पुरुष देखा है, और एक ही क्षणमें उसके विषयमें सारा ज्ञान प्राप्त कर लिया है।"

"डाक्टर रोगियोंको देखकर जब घर लौट आये, तो मैंने खूब हँसते-हँसते कहा--'क्यों डाक्टर साहब! मैंने सुना कि आज आपका ब्याह है?"

"मेरी प्रफुल्लता देखकर डाक्टर सिर्फ झेंपे ही नहीं, बल्कि उदास हो गये।"

"मैंने पूछा—'बाजे-आजे कुछ नहीं बुलाये'?"

"सुनकर उन्होंने एक लम्बी उसास ली, बोले—'ब्याह क्या इतने आनन्दकी चीज़ है'?"

"सुनकर मैं हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई। ऐसी बात तो कभी सुनी ही नहीं थी। मैंने कहा—'सो नहीं होगा, बाजे चाहिये, रोशनी चाहिये!"

"भइयाको ऐसा तंग कर डाला कि भइया उसी दम धूमधामसे बरात निकालनेकी तय्यारीमें लग गये।"

"मैं बार-बार यही किस्सा छेड़ने लगी—बहूके घर आनेपर क्या होगा, मैं क्या करूँगी,—'अच्छा डाक्टर साहब, तब भी क्या आप इसी तरह रोगियोंकी नाड़ी मसकते फिरेंगे?' हि-हि! हि-हि! यद्यपि मनुष्यका—खासकर पुरुषका—मन दृष्टिगोचर नहीं होता,

फिर भी मैं सौगंद खाकर कह सकती हूं कि ये शब्द डाक्टरकी छातीमें शूलकी तरह चुभ गये।"

"बहुत रात बीते लग्न थी। शामके वक्त डाक्टर छतपर बैठे हुए भइयाके साथ दो-एक ग्लास शराब पी रहे थे। दोनों जने इस काममें कुछ-कुछ अभ्यस्त थे। धीरे-धीरे आकाशमें चाँद उदय होने लगा।"

"मैं हँसती हुई ऊपर पहुंची, बोली—'डाक्टर साहब भूल गये क्या? चलनेका वक्त तो हो गया'!"

"यहां ज़रासी एक बात कहनी है। इसी बीचमें मैं छिपकर डाक्टरखानेमें जाकर थोड़ासा सफेद चूरा ले आई थी, और उसमेंसे ज़रासा निगाह बचाकर डाक्टरके गिलासमें मिला दिया था। किस चूरेके खानेसे आदमी मर जाता है, यह डाक्टरसे ही सीख लिया था।"

"डाक्टरने एक उसासमें तमाम गिलास खाली करके कुछ भीजे हुए गद्गद कण्ठसे, मेरे मुंहकी तरफ मर्मान्तिक दृष्टि डालकर, कहा—'अच्छा, तो अब चलता हूं'।"

"शहनाई बजने लगो, मैंने एक बनारसी साड़ी पहन ली; जितने भी गहने सन्दूकमें बँधे रखे थे, सब-के-सब, निकालकर पहन लिये; माँगमें खूब अच्छी तरह सिन्दूर भर लिया।—अपने उसी बकुल वृक्षके नीचे बिछौना बिछाये।"

"बड़ी सुहावनी रात थी। सफेद चाँदनी छिटक रही थी। सोते हुए जगत्की क्लान्ति हरण करती हुई दखिनी हवा बह रही थी। जूँही और मोतियेकी सुगन्धसे सारा बगीचा महक रहा था।"

"शहनाईका शब्द क्रमशः अब दूर चला गया, चाँदनी अब

अन्धकारका रूप धारण करने लगी, उस वृक्षके पल्लव, आकाश और आजन्मकालके घर-द्वारको लेकर दुनियां जब मेरे चारों तरफ़से मायाकी तरह विलाने लगी, तब मैं आँखें मींचकर हँसने लगी।"

"इच्छा थी—जब लोग आकर मुझे देखें, तो मेरी वह हँसी रंगीन नशेकी तरह मेरे ओठोंपर लगी रहे। इच्छा थी—जब मैं अपने अनन्तरात्रिकी सुहाग-कुटीरमें धीरे-धीरे प्रवेश करूँ, तबके लिये इसी हँसीको यहींसे मुंहपर लिये जाऊँ।"

"कहां है मेरी वह सुहाग-कुटीर? कहां है मेरी वह सुहागकी पोशाक? अपने भीतरसे एक खटखटकी आवाज़ सुनकर मैं जाग गई, देखा तो मुझे लेकर तीन लड़के अस्थि-विद्या सीख रहे हैं! छातीके भीतर जहां सुख-दुख धुक-धुक करता रहता था और एक-एक करके प्रतिदिन यौवनकी कलियां जहां खिला करती थीं, वहां बेंत दिखाकर, किस हड्डीका क्या नाम है, मास्टर सिखा रहा है!—और मैंने जो वह अन्तिम हँसी ओठोंपर खिलाई थी, उसका कोई चिह्न तुम्हें दिखाई दिया था क्या?"

"कहानी कैसी लगी?"

मैंने कहा—"बड़े मज़ेकी।"

इतनेमें कौआ बोल उठा। पूछा—"अभी हो क्या?"

कुछ उत्तर न मिला।

घरके भीतर प्रभातका प्रकाश चमक उठा।

(फाल्गुन १९४८)

मुक्तिका उपाय

[१]

फकीरचन्द बचपनसे ही गम्भीर प्रकृतिके आदमी थे। वृद्ध-समाजमें वे हमेशा जँच जाते। ठंडा पानी, ओस और हँसी-मज़ाक उन्हें बिलकुल न सुहाता था। एक तो गम्भीर, फिर वर्षमें लगभग बारहो महीना मुखमण्डलके चारों तरफ़ काला उनका गुलूबन्द लपेटे रहते, जिससे वे बहुत ही ऊँचे दरजेके आदमी मालूम पड़ते। इसके अलावा, बहुत ही कम उमरमें उनके ओष्ठ-अधर और ठोढ़ी दाढ़ी-मूँछोंसे बहुत ज़्यादा ढक आनेके कारण तमाम मुँहपर ऐसा कोई स्थान ही न रह गया, जिसमेंसे हँसी निकलती।

स्त्री हैमवतीकी उमर कम है, और उसका मन पार्थिव विषयोंमें पूरी तरह लगा हुआ है। वह बंकिम बाबूके उपन्यास पढ़ना चाहती है, और पतिकी ठीक देवताके समान पूजा करके उसे तृप्ति नहीं होती। वह ज़रा हँसी-मज़ाक पसन्द करती है; और विकसोन्मुख पुष्प जैसे

वायुके चलने और प्रभातके प्रकाशके लिये व्याकुल हो उठता है, वह भी उसी तरह इस नव-यौवनके समय पतिसे लाड़-प्यार और हँसी-मसखरी पानेकी काफ़ी आशा रखती है। परन्तु पतिदेव उसे छुट्टी पाते ही 'भागवत' पढ़ाते, शामको 'भगवद्गीता' सुनाते, और उसकी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये बीच-बीचमें कभी-कभी शारीरिक शासन करनेमें भी कसर नहीं रखते। जिस दिन हैमवतीके तकियेके नीचेसे "कृष्णकान्तकी विल" निकली थी, उस दिन उस बेचारी लघुप्रकृति युवतीकी सारी रात आंसू बहाते बीती; तब कहीं फकीरचन्दको तसल्ली हुई। एक तो उपन्यास पढ़ना, और फिर पतिदेवको धोखा देना! कुछ भी हो, लगातार आदेश, अनुदेश, उपदेश तथा धर्मनीति और दण्डनीति-द्वारा अन्तमें हैमवतीके मुँहकी हँसी, मनके सुख और यौवनके आवेगको बिलकुल निकाल बाहर करनेमें पतिदेवताने पूर्ण सफलता पाई थी।

परन्तु, अनासक्तोंके लिए संसारमें अनेक विघ्न हैं। एकके बाद एक, फकीरके एक लड़का और एक लड़की पैदा हुई, जिससे गृहस्थीका बन्धन और भी बढ़ गया। पिताकी ताड़नासे इतने बड़े गम्भीर प्रकृति फकीरचन्दको भी आफिसोंमें नौकरीकी उम्मेदवारीमें घूमना पड़ा, परन्तु नौकरी मिलनेकी कोई भी सम्भावना नहीं दिखाई दी।

तब उसने सोचा कि बुद्धदेवकी तरह मैं भी गृहस्थी त्याग दूंगा। यह विचारकर एक दिन आधी रातको वह घर छोड़कर चल दिया।

[२]

बीचमें और एक इतिहास कहना ज़रूरी है। नवग्राम-निवासी षष्ठीचरणके एक ही लड़का था। नाम था माखनलाल। विवाहके बाद जल्दी कोई बाल-बच्चा न होनेके कारण पिताके अनुरोध और नवीनताके प्रलोभनसे उसने और एक विवाह कर लिया। इस विवाहके बाद उनके क्रमशः दोनों स्त्रीसे सात लड़कियां और एक लड़का पैदा हुआ।

माखनलाल आदमी बड़े शौकीन और चंचल-प्रकृतिके हैं, किसी भी तरहके भारी कर्तव्यके द्वारा अपनेको बन्धनमें डालना उन्हें क़तई पसन्द नहीं। एक तो बाल-बच्चोंका भार, उसपर जब दो कर्णधार दोनों तरफ़से ज़ोरोंसे झोका मारने लगे, तब बिलकुल असह्य होनेसे उसने भी एक दिन आधी रातको डुबकी लगाई।

बहुत दिनों तक उसका कोई पता ही नहीं चला। कभी-कभी सुननेमें आता कि एक ब्याहमें कैसा सुख है, इस बातकी परीक्षा करनेके लिये उसने काशीमें जाकर लुके-छिपे और एक ब्याह कर लिया है; सुनते हैं, अभागेको कुछ शान्ति मिली है। सिर्फ देशके आस-पास आनेके लिये कभी-कभी उसका मन चलता है, पर पकड़े जानेके डरसे आ नहीं सकता।

[३]

कुछ दिन घूमता-फिरता उदासीन फकीरचन्द नवग्राममें आ पहुंचा। सड़कके किनारे एक वटवृक्षके नीचे आसन जमाकर एक गहरी

उसास लेकर कहने लगा—"अहा, वैराग्यमेवाभयं। दारा-पुत्र-धन-जन कोई भी किसीका नहीं। का ते कान्ता कस्ते पुत्रः"—कहते-कहते उसने एक गाना शुरू कर दिया!—

"सुन रे सुन, ओ अबोध मन!
सुन साधुकी उक्ति कैसे होगी मुक्ति,
उसी सुयुक्तिको कर रे ग्रहण!
भवकी शुक्ति तोड़, मुक्ति-मुक्ताका कर रे अन्वेषण!
ओरे ओ, भोला मन, भोला मन रे!"

सहसा गीत बन्द हो गया। "अरे, कौन है वह! पिता मालूम होते हैं! पता लगा लिया मालूम पड़ता है! अब तो बड़ी मुसीबतमें फँसे! फिर उसी गृहस्थीके अन्धकूपमें खींच ले जायँगे। ऊँ-हुंकू, भागना पड़ेगा।"

[४]

फकीर झटपट पासके एक घरमें घुस गया। वृद्ध घरका मालिक चुपचाप बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। फकीरको घरमें धँसते देख पूछ बैठा—"कौन हो तुम?"

फकीर—"बबा, मैं संन्यासी हूं।"

वृद्ध—"संन्यासी! देखूँ, देखूँ बेटा, ज़रा उजालेमें देखूँ।"

इतना कहकर बुड्ढा उसे उजालेमें खींच ले गया, और फकीरके मुँहपर झुककर—बूढ़े आदमी जैसे बड़ी मुश्किलसे पोथी पढ़ते हैं, उस तरह—उसका मुँह निरखता हुआ बड़बड़ाने लगा।

"यही तो है हमारा मक्खन ! वही नाक है, वही आँख हैं, सिर्फ माथेमें कुछ फर्क आ गया है और उस चाँदसे मुँहपर दाढ़ी-मूँछें छा गई हैं।" कहते-कहते बूढ़ेने फकीरके दढ़ियल मुंह पर दो-एक बार हाथ फेरा, और बोला—"बेटा, मक्खन !"

कहना न होगा कि बूढ़ेका नाम षष्ठीचरण है।

फ़कीर बड़े चक्करमें पड़ गया, बोला—"मक्खन ! मेरा नाम तो मक्खन नहीं है ! पहले मेरा नाम कुछ भी क्यों न हो, अभी मेरा नाम चिदानन्द स्वामी है। तबीयत चाहे तो परमानन्द भी कह सकते हो।"

षष्ठी—"बेटा, अब तुम अपनेको चिउड़ा बताओ, चाहे परमान्न, तू है मेरा मक्खन ही, बेटा, तुझे तो मैं नहीं भूल सकता !—बेटा, तैंने किस दुःखसे गृहस्थी त्याग दी ! तुझे किस बातकी कमी थी ! दो-दो स्त्री हैं ; बड़ीसे प्रेम न हो, छोटी तो है। लड़के-बालोंकी भी कमी नहीं। दुश्मनोंके मुंहपर राख पड़े, तेरे सात लड़की हैं, एक लड़का है। और मैं बूढ़ा बाप हूँ, मैं कितने दिन और जीऊँगा, सब कुछ तेरा ही बना रहेगा !"

फकीर सहसा चौंक पड़ा, बोला—"कैसी मुसीबत है ! सुनते ही डर लगता है।"

अब सारा माजरा उसकी समझमें आ गया। सोचने लगा, बुराई क्या है, दो-चार दिन बुड्ढेका पुत्र बनकर ही यहां छिपा रहूँ, उसके बाद पता न लगनेपर बाप जब चले जायँगे, तब यहांसे चलता बनूंगा।

फकीरको चुपचाप देख, बुड्ढेके मनमें कोई सन्देह न रह गया। किसना नौकरको बुला कर कहा—"अरे ओ किसना, सबको जाकर कह तो आ, हमारा माखन लौट आया है।"

[५]

देखते-देखते आदमियोंसे घर भर गया। मुहल्लेके लगभग सभी लोगोंने कहा—वही तो है; किसीने सन्देह भी प्रकट किया, पर विश्वास करनेके लिये लोग इतने व्यग्र थे कि सन्दिग्ध लोगोंपर उन्हें बड़ा गुस्सा आने लगा। मानो वे जान-बूझकर उनके रंगमें भंग डालने आये हों, मानो वे मुहल्लेके चौदह अक्षरके पयार छन्दको सत्रह अक्षरका बना बैठे हों, किसी भी तरह उनका संक्षेप हो जानेपर मुहल्लेके आदमियोंको आराम मिले; वे न तो भूत मानते हैं, न ओझाको बुलाते हैं; ताज्जुबकी कहानी सुनकर जब कि सब दंग हो गये हैं, तब वे प्रश्न छेड़ते हैं! इन लोगोंको एक तरहसे नास्तिक कहना चाहिये। अरे, तुम भूतपर विश्वास करो, चाहे मत करो, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं; पर बूढ़े बापके खोये हुए लड़केपर भी विश्वास न करना, यह तो बड़ा हृदयहीनताका काम है। कुछ भी हो, सबकी जब डाँट लगी, तो संशयकारियोंका दल चुप हो गया।

फकीरचन्द्रकी अति भीषण अटल गम्भीरतापर जरा भी ध्यान न देकर मुहल्लेके लोग उसे घेर बैठे, और लगे कहने—"अरे वाह! अब आप ऋषि बन गये हैं, तपस्वी हो गये हैं! हमेशासे तो ...-दोस्तोंमें

छमती रही, आज अचानक महामुनि जमदग्नि बन बैठे! भाई, क्या बात है!"

उन्नतचेता फकीरको यह बात बहुत ही बुरी लगी, पर क्या करता, सहनी पड़ी। एक आदमी बिल्कुल ऊपर आकर बैठ गया, बोला— "अरे मखना, तू तो बिलकुल काला था रे, गोरा कैसे हो गया?"

फकीरने जवाब दिया—"योगाभ्याससे।"

सबने कहा—"देखा, योगका कैसा प्रभाव है!"

एकने कहा—"इसमें आश्चर्य ही क्या! शास्त्रमें लिखा है, भीमने जब हनूमानकी पूँछ पकड़कर उन्हें उठाना चाहा, तो किसी भी तरह न उठा सके। यह कैसे हुआ? वह भी तो योगबल था, भाई!"

यह बात सबको माननी पड़ी।

इतनेमें षष्ठीचरणने आकर फकीरसे कहा—"बेटा, एक बार घरके भीतर हो आओ।"

अभी तक यह बात फकीरके मस्तिष्कमें उदित न हुई थी— सहसा बिजली-सी माथेपर पड़ी। बहुत देर तक चुप रहकर, मुहल्लेवालोंके अनेक अनुचित हँसी-मज़ाकोंको हजम करके, अन्तमें बोला—"बबा, मैं साधु हो चुका हूं, अब मैं घरमें नहीं घुस सकता।"

षष्ठीचरणने मुहल्लेके लोगोंको सम्बोधन करके कहा—"तो ज़रा आप लोगोंको तकलीफ करनी होगी। बहू-बेटियोंको यहीं लिये आता हूं। वे बड़ी व्याकुल हो रही हैं।"

सब उठ गये। फकीर सोचने लगा, इसी मौक़ेपर मारूं एक दौड़—यहांसे भाग चलूं। पर रास्तेमें जाते ही मुहल्लेके लोग

कुत्तेकी तरह पीछा करेंगे, यह सोचकर बेचारेको बेबसीसे वहीं बैठा रहना पड़ा।

ज्यों ही माखनलालकी दोनों स्त्रियोंने प्रवेश किया, त्यों ही फकीरने उन्हें सिर झुकाकर नमस्कार करके कहा—"माता, मैं तुम लोगोंकी सन्तान हूं।"

उसी क्षणमें फकीरकी नाकके आगे खड़ुआ-पहने हुए एक हाथ खड्गकी तरह खेल गया, और फूटे कांसेकी तरह एक आवाज़ उठी—"अरे ओ, मुँहजले लोगटा, तैंने माँ किससे कहा!"

साथ ही और एक कण्ठने, और भी दो स्वर ऊँचे, मुहल्लेको कँपाते हुए गरजकर कहा—"तेरी फूट गई क्या! दीखता नहीं! तुझे मौत भी नहीं आती!"

अपनी स्त्रीके मुँहसे ऐसी मुहावरेकी भाषा सुननेका वह आदी न था, इसलिए अत्यन्त दीनतासे फकीरने हाथ जोड़कर कहा—"आप लोग ग़लत समझी हैं! चलिये, मैं उजालेमें खड़ा होता हूं, ज़रा मुझे पहचानिये तो सही, मैं कौन हूं!"

पहली और दूसरीने पारी-पारीसे कहा—"बहुत देख चुकी हूं! देखते-देखते आँखें घिस गई हैं। तुम नन्हेंसे लल्ला नहीं हो, आज नये पैदा नहीं हुए हो। तुम्हारे दूधके दाँत टूटे ज़माना गुज़र चुका। अरे, तुझे मौत भूल गई है, तो क्या मैं भी भूल जाऊँगी!"

ऐसी इकतरफा दाम्पत्य-वार्ता कब तक चलती, नहीं कह सकते; कारण फकीर बिलकुल वाक्शक्ति-रहित होकर सिर झुकाये खड़ा था।

इतनेमें अत्यन्त कोलाहल सुनकर, और सड़कपर भीड़ जमते देख षष्ठीचरणने घरमें प्रवेश किया।

बोले—"इतने दिनों तक हमारे घरमें सन्नाटा बीत रहा था, बिलकुल सन्नाटा रहता था। आज मालूम होता है कि माखन हमारा लौट आया!"

फकीरने हाथ जोड़कर कहा—"महाशयजी, अपनी पुत्रवधुओंके हाथसे मुझे बचाइये!"

षष्ठी—"बेटा, बहुत दिन पीछे आये हो, इसीसे ज़रा असह्य मालूम पड़ता है। अच्छा, बेटी, तुम लोग अभी जाओ! बेटा माखन तो अभी यहीं है, उसे अब किसी भी तरह नहीं जाने दूंगा।"

दोनों ललनाएँ विदा हो गईं। फकीरने कहा—"महाशयजी, आपका पुत्र क्यों गृहस्थी छोड़ गया है, इसका मैंने पूरा-पूरा अनुभव कर लिया है। आप मेरा प्रणाम लीजिए, मैं चला!"

बूढ़ेने ऐसी ज़ोरसे रोना शुरू किया कि मुहल्लेके तमाम लोग समझ बैठे, माखनने बापको पीटा है। वे 'हैं-हैं' करते हुए दौड़े आये। सबने आकर फकीरको चेता दिया—"ऐसा पाखण्ड यहां नहीं चल सकता। भले आदमीकी तरह रहना होगा।" एकने कहा—"ये परम हंस थोड़े ही हैं, परम बक हैं, बक!—बगुला-भगत!"

गम्भीरता, दाढ़ी-मूँछ और गुलूबन्दके ज़ोरसे फकीरको ऐसी बुरी-भली कभी न सुननी पड़ी थीं। ख़ैर, कुछ भी हो, फिर कहीं भाग न जाय, इस आशंकासे मुहल्लेके लोग चौकन्ने रहे। स्वयं ज़मींदारने षष्ठीचरणका पक्ष लिया।

[६]

फ़कीरने देखा, ऐसा कड़ा पहरा बैठा है कि बिना मरे वहाँसे निकलना ही मुश्किल है ! वह अकेला घरमें बैठा हुआ गीत गाने लगा:—

"युक्ति सुन साधूकी रे, बचेगा कैसे भव-बन्धनसे,
सुनके युक्ति ग्रहण कर उसको, मनमें हो निश्चिन्त।—"

कहना न होगा कि इस गीतका आध्यात्मिक अर्थ क्षीण हो चला है।

ऐसे तो किसी तरह दिन कट भी रहे थे। इतनेमें एक आफ़त और आ पड़ी,—माखनके आनेकी खबर पाते ही दोनों स्त्रियोंके मायकेसे साले और सालियोंका एक झुंड और आ पहुंचा।

आनेके साथ उन लोगोंने सबसे पहले फकीरकी दाढ़ी-मूँछें नोचना शुरू किया, कहने लगीं—"यह तो सचमुचकी दाढ़ी-मूँछ नहीं हैं, भेष बदलनेके लिए गोंदसे चुपका ली हैं।"

नाकके नीचेकी मूँछ पकड़कर लगी खींचने। अब तो बेचारे फकीरचन्द जैसे अत्यन्त महान् पुरुषके लिए अपने माहात्म्यकी रक्षा करना कठिन हो उठा। इसके सिवा कानोंपर भी काफ़ी आफ़त थी; एक तो मलकर, दूसरे ऐसी-ऐसी भाषाओंका प्रयोगकर कि जिसके सुननेसे बिना मले ही कान लाल हो उठें।

इसके बाद उन लोगोंने फकीरको ऐसे-ऐसे गीतोंके नमूने सुनाये कि आधुनिक बड़े-बड़े नये पण्डित भी उनकी आध्यात्मिक व्याख्या

कलेमें हार मान आयँ। सोते वक्त बेचारेके गालोंपर स्याही और चूना पोत दिया गया। खाते वक्त कसारूके बदले घुइयाँ, नारियलके पानीके बदले हुक्काका पानी, दूधके बदले पिठीके धोवन देनेकी तैयारियाँ की गईं; पटाके नीचे सुपारी रखकर मज़ेकी पटक खिलाई, पूँछ बनाई, और सैकड़ों प्रचलित तरकीबोंसे फकीरकी अभ्रभेदी गम्भीरताकी अच्छी तरह मरम्मत की गई।

फकीरचन्द गुस्सेमें आकर, लाल-पीला होकर, झुंझलाकर, चिल्लाकर किसी भी तरह उपद्रवकारियोंके मनमें भयका संचार नहीं कर सका। उलटा सबोंके सामने भोंदू बुद्धू बनाया गया। इसके सिवा दरवाज़ेकी ओटमेंसे एक मीठे गलेकी कहकहादार हँसी कभी-कभी उसके कानोंमें पड़ती; वह कुछ परिचित-सी मालूम देती, उससे मन और भी दूना अधीर हो उठता।

परिचित कण्ठस्वर पाठकोंसे छिपा नहीं है। इतना कह देना काफ़ी होगा कि षष्ठीचरण किसी नातेसे हैमवतीके मामा लगते हैं। ब्याहके बाद साससे बहुत तंग आकर पितृमातृ-हीन हैमवती कभी-कभी किसी-न-किसी नातेदारके यहाँ आकर आश्रय लेती। बहुत दिनों बाद वह अपने मामाके यहाँ आकर नेपथ्यसे इस परम कौतूहलपूर्ण अभिनयको देख रही थी। उस समय हैमवतीमें स्वाभाविक रंग-प्रियताके साथ-साथ प्रतिहिंसा-प्रवृत्तिका उद्रेक हुआ था :या नहीं, इस बातको तो चरित्रतत्त्वज्ञ विद्वान् ही समझ सकते हैं—हमारी समझसे बाहर है।

जिनके साथ हँसी-मसखरीका रिश्ता था, वे तो बीच-बीचमें दम

भी ले लेते थे, पर जिनसे स्नेहका नाता है, उनसे छुटकारा पाना कठिन है। सात-सात लड़कियों और एक लड़केने उसके बापको दम कर दिया—एक क्षणके लिए भी छोड़ना किसे कहते हैं। बापके स्नेहपर दखल करनेके लिए उनकी माताओंने उन्हें बड़ी कड़ाईके साथ नियुक्त कर रखा था। दोनों माताओंमें भी अनबन खूब थी, दोनों ही इस कोशिशमें थीं कि मेरे बच्चे ज्यादा प्यार पावें। दोनों ही अपनी-अपनी सन्तानोंको सर्वदा उत्तेजित किये रहतीं—दोनों दल मिलकर पिताकी गरदनसे लिपटते, गोदमें बैठते, मुँह चूमते। इस तरह दोनों दल इस प्रबल स्नेह व्यक्त करनेके कार्यमें एक दूसरेको जीतनेकी कोशिश करने लगे।

यह तो कहनेकी जरूरत ही नहीं कि फकीर बेचारा अत्यन्त निर्लिप्त-स्वभाव है, नहीं तो अपने बाल-बच्चोंको छोड़कर क्यों आता; और बच्चे भक्ति करना जानते नहीं, उन्होंने साधुत्वपर मुग्ध होना सीखा ही नहीं, इसलिए फकीरकी शिशु-जातिपर तिलमात्र भी अनुरक्ति न थी, उन्हें वे कीट-पतंगोंकी तरह शरीरसे दूर ही रखना चाहते थे। फ़िलहाल वे प्रतिक्षण शिशु-पंगपालोंसे आच्छन्न हो कर शुरूसे आखीर तक आँख-फोड़ू बर्जेस टाइपके छोटे-बड़े फुटनोटोंसे भरे हुए ऐतिहासिक निबन्धकी तरह शोभायमान हुए। उनमें उमरका काफ़ी तारतम्य था, और वे सब उनके साथ प्रौढ़ सभ्य-अनोचित व्यवहार न करते थे; शुद्ध पवित्र फकीरकी आँखोंमें बहुधा आँसुओंका संचार होता, और इसमें सन्देह नहीं कि वे आनन्दाश्रु नहीं होते थे।

दूसरेके बच्चे जब अनेक स्वरोंमें उन्हें "काक्कू, काक्कू" कहकर प्यार

करते, तब उनका पाशविक शक्ति प्रयोग करनेको जी चाहता, पर डरसे कर नहीं सकते। मुँह और आँखें विकृत करके चुपचाप बैठे रहते।

अन्तमें फ़कीरने बड़े जोरसे हल्ला मचाकर कहा—"मैं तो आऊँगा ही, देखूँ मुझे कौन रोके रखता है!"

तब गांवके लोगोंने एक वकील लाकर खड़ा कर दिया। वकीलने आकर कहा—"जानते हैं, आपके दो स्त्रियाँ हैं!"

फकीर—"जी, यहीं आकर पहले-पहल मालूम हुआ।"

वकील—"अपने इस बड़े परिवारके भरण-पोषणका भार अगर आप न लेंगे, तो आपकी इन अनाथिनी दोनों स्त्रियोंको अदालतकी शरण लेनी पड़ेगी, पहलेसे कहे देता हूं।"

फकीरको सबसे ज़्यादा डर था, तो बस अदालतका ही। यह बात उसे मालूम थी कि वकील लोग जिरह करते वक्त महापुरुषोंकी मान-मर्यादा और गाम्भीर्यका जरा भी ख़याल नहीं करते—खुले आम अपमानित करते हैं और अख़बारोंमें उसकी रिपोर्ट छपा देते हैं। फकीरने डबडबाती हुई आँखोंसे वकीलको विस्तृत आत्म-परिचय देनेकी कोशिश की—वकीलने उसकी चालाकी, हाज़िर-जवाबी और झूठी बनावटी बातें बनानेकी असाधारण क्षमताकी भूरिभूरि प्रशंसा की। सुनकर फकीरको अपने हाथ-पैर नोंच खानेकी इच्छा होने लगी।

षष्ठीचरण फकीरको फिर भागनेके लिए तैयार देखकर मारे शोकके अधीर हो उठे। मुहल्लेके लोग उसे चारों तरफसे घेरकर गाली-गलौज करने लगे; और वकील साहबने उसे ऐसा धमकाया कि बेचारेका सारा उत्साह पस्त हो गया—मुंहका बोल बन्द हो गया।

इसके बाद जब आठों बच्चोंने मिलकर गाढ़े स्नेहके साथ चारों तरफसे चुपटकर उसका दम बन्द कर दिया, तब ओटमें खड़ी हुई हैमवती हँसे या रोवे, कुछ निश्चय नहीं कर सकी।

फकीरने तंग आकर, और कोई चारा न देख, इसी बीचमें पिताको एक चिट्ठी डाल दी थी, जिसमें सब हाल साफ-साफ लिखा था। उस चिट्ठीको पाकर फकीरके पिता हरिचरण बाबू भी आ पहुँचे। मुहल्लेके लोग ज़मींदार और वकील किसी भी तरह दखल नहीं छोड़ना चाहते।

यह फकीर नहीं है, माखन ही है, इस बातके उन लोगोंने हज़ारों अकाट्य प्रमाण पेश किये—यहां तक कि जिस दाईने माखनको पाल-पोसकर बड़ा किया था, उस बुढ़ियाको भी पकड़ लाये। वह भी अपने कांपते हुए हाथसे फकीरकी ठोढ़ी उठाकर, मुंहको अच्छी तरह देखभाल कर, उसकी दाढ़ीपर आंसू टपकाने लगी।

जब देखा कि इतनेपर भी फकीर बसमें नहीं आता, तब घूँघट निकालकर दोनों स्त्रियां आकर उपस्थित हुईं। मुहल्लेके लोग शरमके मारे उठकर बाहर चले गये। रह गये सिर्फ दोनों बाप, फकीर और बच्चे।

दोनों स्त्रियोंने हाथ हिलाकर फकीरसे पूछा—"किस भाड़में, यमराजके किस द्वारपर जाना चाहता है, कलमुँहे!"

फकीर इसका ठीक-ठीक जवाब न दे सका, इसलिए चुपचाप बैठा रहा, परन्तु चेहरेको देखकर तो यही अनुमान हुआ कि यमके किसी विशेष द्वारके प्रति उसका विशेष पक्षपात या अनुराग नहीं है;

फिलहाल किसी भी एक द्वारको उसे शरण मिल जाय, तो उसके प्राण बच जायँ। सिर्फ एक बार इस व्यूहसे किसी तरह निकल-भर आय।

इतनेमें एक तीसरी रमणी-मूर्तिने घरमें प्रवेश कर फकीरको प्रणाम किया।

फकीर पहले तो चकित हो गया, फिर आनन्दके मारे खुशीसे उछलकर बोला—"अरे, यह तो हैमवती ही है!"

अपनी या दूसरेकी स्त्रीको देखकर इतना प्रेम उसकी आँखोंमें इससे पहले आज तक कभी न दिखाई दिया था। मालूम हुआ, मूर्तिमती मुक्तिने स्वयं आकर दर्शन दिये हैं।

× × × ×

और एक आदमी मुंहपर दुशाला डाले छिपकर सब देख रहा था। उसका नाम है माखनलाल। एक अपरिचित निरीह व्यक्तिको अपने पदपर अभिषिक्त देखकर वह अब तक परम सुखानुभव कर रहा था; अन्तमें जब हैमवतीको उपस्थित देखकर समझा कि उक्त निरपराधी व्यक्ति उसका खास बहनोई है, तब उसके चित्तमें दया आ गई, घरमें घुसकर बोला—"ऊँ-हुंःक्, अपने ही आदमीको इस तरह विपत्तिमें डालना महापातक है।" अपनी दोनों स्त्रियोंको ओर उँगलीसे इशारा करता हुआ बोला—"ये मेरी ही रस्सी हैं, मेरी ही गागर।"*

माखनलालके इस असाधारण महत्त्व और वीरतासे मुहल्लेके लोग दंग रह गये।

(चैत्र, १६४८)

* बंगालमें ये दो चीजें आत्म-हत्याके लिए प्रसिद्ध हैं। आत्म-हत्या करनेवाले गलेमें रस्सी और गागर बांधकर पानीमें डूब मरते हैं। —अ०

त्याग

पहला परिच्छेद

फागुनकी पूर्णिमा है। आमके बौरोंकी सुगन्ध लेकर नव वसन्तकी पवन चल रही है। तालाबके किनारे एक पुराने लीचीके पेड़के घने पत्तों में से किसी निद्राहीन अश्रान्त पपीहेकी तान मुखर्जियोंके घरके एक निद्राहीन शयनगृहमें प्रवेश कर रही है। हेमन्त कुछ चंचलताके साथ कभी तो अपनी स्त्रीके बँधे हुए सिरके बालोंमेंसे थोड़ेसे बाल खोलकर अपनी उँगलियोंमें लपेटता है, कभी उसके कड़े और चूड़ियोंमें भिड़न्त कराकर टन-टन आवाज़ करता है, और कभी उसके जूड़ेमें लिपटी हुई फूलकी मालाको उतारकर उसके मुँहपर रख देता है। सन्ध्या-समयके निस्तब्ध फूलके पौधेको सचेत करनेके लिये पवन जैसे एक बार इधरसे और एक बार उधरसे ज़रा-ज़रा हिला-डुला देता है, हेमन्तकी भी कुछ-कुछ वैसी ही हालत थी।

परन्तु कुसुम सामनेके चन्द्रमाकी चाँदनीमें बहते हुए शून्यकी ओर दोनों आँखें गड़ाकर चुपचाप बैठी है। पतिका चापल्य उसे छूकर टकराकर पीछे लौट आता है। अन्तमें हेमन्तने कुछ अधीरतासे कुसुमके दोनों हाथ पकड़कर झकझोर डाले, बोला—"कुसुम, कहां हो तुम? तुम तो इतनी दूर पहुंच गई हो कि दूरबीनसे बड़े गौरके साथ देखनेपर बड़ी मुश्किलसे कहीं बूंद-सी दिखाई पड़ती हो। मेरी बड़ी इच्छा है, आज तुम ज़रा पास आ जाओ। देखो तो सही, कैसी सुहावनी रात है!"

कुसुमने शून्यकी ओरसे दृष्टि हटाकर हेमन्तकी ओर मुँह कर लिया, बोली—"यह चाँदनी रात, यह वसन्तकी पवन, इसी क्षणमें मिथ्या होकर नष्ट-भ्रष्ट हो सकती है, मैं एक ऐसा मन्त्र जानती हूं।"

हेमन्तने कहा—"यदि जानती हो, तो उसे उचारण करनेकी ज़रूरत नहीं, बल्कि ऐसा अगर कोई मन्त्र याद हो कि जिससे सप्ताहमें तीन-चार इतवार पड़ें, या रात शामके पाँच-साढ़े-पाँच बजे तक ठहर सके, तो उसे सुननेके लिए मैं तैयार हूं।" कहते हुए उसने कुसुमको और भी अपनी ओर खींचना चाहा। कुसुम उस आलिंगन-पाशमें पकड़ाई न दी, कहने लगी—"मरते वक्त मैं जो बात तुमसे कहना चाहती थी, उसे आज ही कहनेको जी चाहता है। आज मालूम होता है कि तुम मुझे कितनी ही सज़ा क्यों न दो, मैं उसे बड़ी खुशीसे बरदाश्त कर सकूँगी।"

सज़ाके बारेमें 'जयदेव'का एक श्लोक सुनाकर हेमन्त रसिकता करनेकी कोशिश कर रहा था। इतनेमें मालूम पड़ा कि गुस्सेसे आते

हुए किसीके स्लीपरकी चट्ट-चट्ट आवाज़ क्रमशः निकटवर्ती हो रही है। यह हेमन्तके पिता हरिहर मुखर्जीके आनेका परिचित पद-शब्द था। हेमन्त घबरा-सा गया।

हरिहरने दरवाज़ेके पास आकर क्रोधसे गरजते हुए कहा—"हेमन्त, बहूको अभी तुरन्त ही घरसे निकाल बाहर करो।" हेमन्तने स्त्रीके मुंहकी ओर देखा, स्त्रीने कुछ भी आश्चर्य प्रकट नहीं किया। सिर्फ दोनों हाथोंसे अपना मुंह छिपाकर अपनी सारी शक्ति और इच्छासे अपनेको मानो लुप्त कर देनेकी कोशिश करने लगी। दखिनी हवाके साथ पपीहेकी मीठी तान घरमें प्रवेश करने लगी, किसीके कानों तक न पहुंची। दुनियां ऐसी असीम सुन्दर है, पर फिर भी इतनी जल्दी विकल हो जाती है।

दूसरा परिच्छेद

हेमन्तने बाहरसे लौटकर स्त्रीसे पूछा—"क्यों, यह बात सच है?"

स्त्रीने कहा—"हां, सच है।"

"इतने दिनोंसे कही क्यों नहीं थी?"

"बहुत दफे कहनेकी कोशिश की है, पर कह नहीं सकी हूं। मैं बड़ी पापिन हूं।"

"तो आज सब खोलकर कह दो।"

कुसुमने गम्भीरताके साथ दृढ़ स्वरसे सब हाल कह सुनाया—मानो वह अटल चरणोंसे धीर गतिसे प्रज्ज्वलित अग्निके भीतर होकर

निकल गई; कितनी जलती थी, कोई न समझ सका। सब सुनकर हेमन्त उठकर चल दिया।

कुसुमने समझा कि जो प्राणनाथ चले गये, उन्हें अब वह पा नहीं सकती। कुछ भी आश्चर्य न मालूम हुआ; यह घटना भी मानो और-और दैनिक घटनाओंकी तरह बहुत ही स्वाभाविक भावसे उसके सामने आ खड़ी हुई; मनके भीतर ऐसे ही एक सूखे सन्नाटेका संचार हुआ है। बार-बार उसे दुनियाँ और प्रेम शुरूसे लेकर आखिर तक झूठा और शून्य मालूम देने लगा। हेमन्तके अतीत प्रेमकी सारी बातें याद करके अत्यन्त नीरस कठिन निरानन्द हँसी एक पैनी निठुर छुरीकी तरह उसके मनपर एक किनारेसे दूसरे किनारे तक दाग कर गई। शायद उसने सोचा कि जिस प्रेमको वह इतना समझती थी, इतना आदर, इतनी घनिष्ठता,—जिसका पल-भरका विच्छेद ऐसा मर्मान्तिक था, जिसका क्षण-भरका मिलन ऐसा निविड़ानन्दमय था, जो असीम अनन्त जान पड़ता था, जन्म-जन्मान्तरमें भी जिसके अन्तकी कल्पना नहीं कर सकती थी—वही प्रेम है यह! बस, इतनी-सी नींवपर खड़ा था वह! समाजने ज्यों ही जरा चोट पहुंचाई कि चटसे वह असीम अनन्त प्रेम टूक-टूक होकर एक मुट्ठी धूल बन गया! हेमन्त अभी तुरन्त, कुछ देर पहले, कम्पित कण्ठोंसे कानोंके पास कह रहा था—"कैसी सुहावनी रात है!" वह रात तो अभी खत्म भी नहीं हुई है, अब भी वही पपीहा बोल रहा है, वही दखिनी हवा मसहरीको कँपा जाती है, वही चाँदनी सुख-श्रान्त सुप्त सुन्दरीकी तरह खिड़कीके पासके पलंगके एक

किनारेसे मिलकर खड़ी हुई है। सब कुछ मिथ्या है! प्रेम मुझसे भी ज्यादा मिथ्यावादी है—मिथ्याचारी है!

तीसरा परिच्छेद

दूसरे दिन सुबह ही अनिद्रासे शुष्क हेमन्त पागलकी तरह प्यारीशंकर घोषालके घर पहुंचा। प्यारीशंकरने पूछा—"कहो भई हेम, क्या खबर है!"

हेमन्तने मानो बड़ी-भारी एक आगकी तरह खूब ऊँची लौसे जलते हुए काँपते-काँपते कहा—"तुमने हमारी जाति नष्ट की है—सर्वनाश किया है—तुम्हें इसकी सज़ा भुगतनी पड़ेगी।"—कहते-कहते उसका गला भर आया, कंठ रुक गया।

प्यारीशंकरने ज़रा मुसकिराते हुए कहा—"और तुम लोगोंने हमारी जातिकी रक्षा की है, हमारे समाजकी रक्षा की है, हमारी पीठपर हाथ फेरा है! हमपर तुम लोगोंकी बड़ी महरबानी है, बड़ा प्रेम है, क्यों?"

हेमन्तने तो चाहा था उसी क्षणमें प्यारीशंकरको भस्म कर देना, परन्तु उस तेजसे वह खुद ही जलने लगा; प्यारीशंकर बड़े मजेमें ज्यों-का-त्यों तन्दुरुस्त बैठा रहा।

हेमन्तने भर्राई हुई आवाज़में कहा—"मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?"

प्यारीशंकरने कहा—"मैं पूछता हूं, मेरी एक लड़कीके सिवा

दूसरी सन्तान नहीं, मेरी उस लड़कीने तुम्हारे बापका क्या अपराध किया था ! तुम तब छोटे थे, बच्चे थे, इसके भीतर बड़े-बड़े गुल हैं, खिलेंगे तब देखना।"

"मेरा दामाद नवकान्त जब मेरी लड़कीके गहने चुराकर विलायत भाग गया, तब तुम बच्चे थे। उसके बाद, पाँच वर्ष पीछे जब वह बैरिस्टर होकर देशको लौटा, तब मुहल्लेमें सनसना फैल गई, शायद तुम्हें कुछ-कुछ याद हो, या तुम्हें नहीं भी याद हो, तुम तब कलकत्तेके स्कूलमें पढ़ते थे। तुम्हारे बापने गाँवके सरपंच बनकर कहा कि 'लड़कीको अगर दामादके यहाँ भेजनेका इरादा हो, तो भेज दो, उसे फिर अपने घर नहीं ला सकते।' मैंने उनके हाथ जोड़े, पैर छुए, मिन्नत की,—'भइया इस बार तुम मेरी रक्षा करो। मैंने लड़केको गोबर खिलाकर प्रायश्चित्त कराया है, आप लोग उसे जातिमें ले लीजिए।' तुम्हारे बाप किसी भी तरह राज़ी न हुए, मैं भी अपनी इकलौती बिटियाको न छोड़ सका। जाति छोड़कर, देश छोड़कर, कलकत्तेमें आकर रहा। यहाँ आकर भी पिण्ड न छूटा। अपने भतीजेकी ब्याहकी पूरी तैयारियाँ कर चुका, तो तुम्हारे बापने आकर लड़की-वालोंको ऐसा उत्तेजित कर दिया कि आख़िर ब्याह हुआ ही नहीं। मैंने प्रतिज्ञा की कि अगर इसका बदला न ले लूँ, तो ब्राह्मणकी पैदायश नहीं।—अब शायद कुछ-कुछ समझ गये होगे—पर थोड़ीसी और सुन लो,—सारी बातें सुनकर तुम खुश हो जाओगे—इसके अन्दर एक रस है।"

"तुम जब कालेजमें पढ़ते थे, तुम्हारे घरके पास ही विप्रदास

चटर्जीका मकान था। बेचारा बड़ा भला-मानस था, अब मर चुका है। चटर्जी महाशयके मकानमें कुसुम नामकी एक बाल-विधवा अनाथा कायस्थकी लड़की आश्रित रूपमें रहती थी। लड़की बड़ी सुन्दर थी—बेचारा बूढ़ा ब्राह्मण कालेजके लड़कोंकी निगाहसे उसे बचाये रखनेके लिए ज़रा दुश्चिन्ताग्रस्त हो गया था, पर बूढ़े आदमीको चकमा देना एक लड़कीके लिए मामूली बात थी। लड़की अक्सर कपड़े सुखानेके लिए छतपर जाया करती, और तुम्हें भी शायद छतपर बिना गये पाठ याद न होता था। आपसमें दोनोंकी छत परसे कोई बातचीत होती थी या नहीं, यह तुम्हीं जानो, पर लड़कीके रंग-ढंग देखकर बूढ़ेको सन्देह हुआ; क्योंकि काम-धन्धेमें उसकी अक्सर भूलें पाई जातीं, और तपस्विनी गौरीकी तरह वह दिनों-दिन आहार छोड़ने लगी। किसी-किसी दिन सन्ध्याके समय वह बूढ़ेके सामने ही अकारण आँसुओंको नहीं रोक सकती थी।"

"आख़िर बूढ़ेने आविष्कार किया कि छतपर तुम दोनोंकी वक़्त बे-वक़्त नीरव भेंट-मुलाकात हुआ करती है। यहाँ तक कि तुम कालेजमें ग़ैरहाज़िरी करके दोपहरको छतके एक कोनेमें ज़ीनेकी छायामें बैठकर किताबके पन्ने उल्टा करते थे; एकान्त अध्ययनमें सहसा तुम्हारा इतना उत्साह बढ़ गया था! विप्रदास जब मेरे पास सलाह लेने आया, तो मैंने कहा—चचा, तुम तो काशीजी जानेकी सोच रहे थे, लड़कीको मेरे पास छोड़कर तुम तीर्थ-वास करने चले जाओ, मैं उसका भार अपने ऊपर लेता हूं।"

"विप्रदास तीर्थ करने गया। मैंने उस लड़कीको श्रीपति

चटर्जीके घर रखकर उसे ही लड़कीका बाप प्रसिद्ध कर दिया। उसके बाद जो कुछ हुआ, तुम जानते ही हो। तुमसे शुरूसे अन्त तक सब बातें कहनेमें बड़ा आनन्द आया। जैसे कोई कहानी हो। तबीयत तो है कि इसे पूरी लिखकर एक किताब छपाऊँ, पर मुझे लिखना नहीं आता। मेरा भतीजा, सुनता हूं, थोड़ा-बहुत लिखा करता है—उसीसे लिखानेकी इच्छा है। पर तुम और वह दोनों मिलकर लिखो, तो सबसे अच्छा हो, क्योंकि कहानीका उपसंहार मुझे अच्छी तरह मालूम नहीं।"

हेमन्तने प्यारीशंकरकी इन अन्तकी बातोंपर विशेष ध्यान न दिया, बोला—"कुसुमने इस विवाहमें कोई आपत्ति नहीं की ?"

प्यारीशंकरने कहा—"आपत्ति थी या नहीं, समझना बड़ी टेढ़ी खीर है। जानते हो, बेटा, औरतोंका मन ठहरा ; जब 'ना' कहें, तो 'हाँ' समझना चाहिए। पहले-पहल तो नये मकानमें आकर तुम्हें न देख सकनेके कारण कैसी पगली-सी हो गई। तुमने भी, देखूँ तो, न-जाने कैसे पता लगा ही लिया, अकसर किताबें हाथमें लिए कालेज जाते समय रास्ता भूल जाया करते—और श्रीपतिके मकानके सामने न जाने क्या ढूँढ़ा करते ;—ठीक प्रेसिडेन्सी कालेजका रास्ता ढूँढ़ते हो, ऐसा तो नहीं जान पड़ता था, कारण किसी भले-आदमीके घरके जंगलेसे सिर्फ़ कीट-पतंगों और उन्मत्त युवकोंके हृदयके लिए ही रास्ता हुआ करता है। देख-सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। देखा, तुम्हारी पढ़ाईमें बहुत हर्ज़ हो रहा है और लड़कीकी अवस्था भी संकटापन्न है।"

"एक दिन कुसुमको बुलाकर मैंने कहा—बिटिया, मैं बूढ़ा आदमी हूं, मुझसे शरमानेकी ज़रूरत नहीं—'तू जिसे मन-ही-मन चाहती है, मैं जानता हूं। लड़का भी मिट्टी हुआ जा रहा है। मेरी इच्छा है, दोनोंका मेल हो जाय।' सुनते ही कुसुम सहसा छाती फाड़कर रो उठी और तेज़ीसे भाग गई। इसी तरह अकसर कभी-कभी शामको श्रीपतिके घर जाकर कुसुमको बुलाता और उससे तुम्हारा ज़िकर कर-करके लज्जा छुटाता। अन्तमें उसकी शरम छूट गई; और प्रतिदिनकी क्रमिक आलोचना द्वारा मैंने उसे समझा दिया कि ब्याहके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं—इसके अलावा मिलनका कोई मार्ग नहीं। कुसुमने कहा—'किस तरह होगा?' मैंने कहा—'कुलीनकी कन्या बताकर चला दूंगा।' बहुत तर्क-वितर्कके बाद उसने तुम्हारी सम्मति जाननी चाही। मैंने कहा—'वह तो वैसे ही पगला-सा हो रहा है, उससे ये सब गड़बड़ीकी बातें करनेसे फायदा? बिना आपत्तिके शान्तिसे काम हो जाना ही दोनोंके लिए अच्छा है। ख़ासकर जब कि इस बातके खुल जानेका कोई डर नहीं, तो फिर ख़ामख़्वाह क्यों उस बेचारेको ज़िन्दगी-भरके लिए परेशानीमें डाला जाय!"

"कुसुम क्या समझी, क्या नहीं समझी, मैं कुछ न समझ सका। कभी रोती, कभी चुपकी बैठी रहती। अन्तमें मैं जब कहता—'तो जाने दे', तो फिर वह अधीर हो उठती। ऐसी दशामें श्रीपतिके ज़रिये तुम्हारे पास ब्याहका प्रस्ताव भिजवाया। देखा, सम्मति देनेमें तुमने ज़रा भी देर न लगाई। तब ब्याहकी बात पक्की हो गई।"

"विवाहसे कुछ पहले कुसुम ऐसी बिखरी कि बखेरना दुशवार हो गया। वह पैरों पड़ने लगी, बोली—'नहीं ताऊजी, ऐसा मत करो।' मैंने कहा—'कैसी पगली हो गई है, सब कुछ ते हो चुका है, अब कैसे बात लौटाई जा सकती है।' कुसुम बोली—'तुम ज़ाहिर कर दो कि सहसा उसकी मौत हो गई है और यहांसे कहींको रवाना कर दो।' मैंने कहा—'उस लड़केकी क्या दशा होगी! उसकी बहुत दिनोंकी आशा कल पूर्ण होगी, यह जानकर वह स्वर्गमें बैठा हुआ है। आज मैं सहसा उसके पास तुम्हारे मरनेकी खबर पहुंचा दूं! और उसके दूसरे ही दिन तुम्हारे पास उसके मरनेकी खबर पहुंचानी पड़ेगी, और फिर उसी दिन शामको मेरे पास तुम्हारे मर जानेका समाचार आवेगा! मैं क्या इस बुढ़ौतीमें स्त्री-हत्या और ब्रह्म-हत्या कराने बैठा हूं!"

"उसके बाद, शुभ लग्नमें शुभ विवाह सम्पन्न हो गया—मैं अपने एक कर्त्तव्यके दायित्वसे मुक्त हुआ। फिर क्या हुआ, सो तुम जानते ही हो।"

हेमन्तने कहा—"हम लोगोंका जो कुछ करना था, सो तो आप कर चुके थे, फिर इस बातको ज़ाहिर क्यों किया?"

प्यारीशंकरने कहा—"देखा कि तुम्हारी छोटी बहनके ब्याहकी बातचीत सब पक्की हो चुकी है। तब मन-ही-मन सोचने लगा, एक ब्राह्मणकी जाति तो बिगड़ चुकी है, पर वह तो सिर्फ़ कर्त्तव्य समझकर। अब जो दूसरे एक ब्राह्मणकी जाति जा रही है, उसमें मेरा कर्त्तव्य है कि उसकी रक्षा करूं, इसीलिए उन लोगोंको चिट्ठी

लिख दी। लिख दिया कि हेमन्तने शूद्रकी कन्याके साथ विवाह किया है, इसका मेरे पास सबूत है।"

हेमन्तने बड़ी मुश्किलसे धीरज धरकर कहा—"अब मैं जो इस लड़कीको छोड़ दूंगा, इसकी दशा क्या होगी? आप इसे आश्रय देंगे?"

प्यारीशंकरने कहा—"मेरा जो काम था, सो मैं कर चुका, अब दूसरेकी छोड़ी हुई स्त्रीका पोषण करना मेरा कर्त्तव्य नहीं।—अरे, कोई है, हेमन्त बाबूके लिए ज़रा बरफ डालकर एक गिलास डाबका (कच्चे नारियलका) पानी ले आ, और पान भी लेते आना।"

हेमन्त इस सुशीतल आतिथ्यकी प्रतीक्षा किये बिना ही, तुरन्त ही वहाँसे चल दिया।

चौथा परिच्छेद

कृष्णपक्षकी पंचमी है। अँधेरी रात है। चिड़िया चुहचुहाती नहीं हैं। तालाबके किनारेके लीचीके पेड़ने मानो काले चित्रपटपर गहरी स्याहीका-सा लेप कर दिया हो। सिर्फ़ दक्खिनी हवा इस अन्धकारमें अन्धेकी तरह घूम-फिर रही है, मानो उसे अँधेरेने पकड़ लिया हो। आकाशके तारे टकटकी लगाये सतर्क दृष्टिसे जी-जानसे अन्धकारको भेदकर न जाने किस रहस्यका आविष्कार करना चाहते हैं।

शयन-गृहमें आज दीपक नहीं जलाया गया है। हेमन्त खिड़कीके पास पलंगपर बैठा हुआ सामनेके अन्धकारकी ओर देख रहा है।

कुसुम ज़मीनपर दोनों हाथोंसे उसके पैर पकड़कर, पैरोंपर सिर रक्खे पड़ी है। समय मानो स्तम्भित समुद्रकी तरह स्थिर हो गया है। मानो अनन्त निशीथिनीके ऊपर अदृष्ट-चित्रकारने यह एक चिरस्थायी चित्र खींच दिया हो—चारों ओर प्रलय है, बीचमें एक विचारक है, और उसके पैरोंके पास एक अपराधिनी।

फिर स्लीपरोंकी चट्-चट् आवाज़ हुई। हरिहर मुखर्जीने दरवाज़ेके पास आकर कहा—"बहुत देर हो चुकी है, अब समय नहीं दे सकता। लड़कीको घरसे निकाल बाहर करो!"

कुसुमने इन शब्दोंके सुनते ही क्षण-भरके लिए एक बार चिर जीवनकी साध मिटानेके लिए हेमन्तके पैर और भी दूने आवेगसे पकड़ लिए—चरण चूमकर पैरोंकी धूल माथेसे लगाकर पैर छोड़ दिये।

हेमन्तने उठकर पितासे जाकर कहा—"स्त्रीको मैं नहीं त्याग सकता।"

हरिहरने गरजकर कहा—"तो क्या जात खोयेगा?"

हेमन्तने कहा—"जात-पाँत मैं नहीं मानता।"

"तो जा, तू भी निकल जा।"

वैशाख, १९४९]

एक रात्रि

सुरबालाके संग मैं एक साथ पाठशाला गया हूं, और 'बऊ-बऊ' खेला हूं। उसके घर जानेपर सुरबालाकी मा मुझे बहुत प्यार करती थीं, और हम दोनोंको एक साथ खड़ा करके देखतीं और आपसमें बातचीत करतीं—"अहा! दोनोंकी जोड़ी कैसी अच्छी लगती है!"

मैं छोटा था, पर इस वाक्यका अर्थ एक प्रकारसे समझ आता था। सुरबालापर औरोंकी अपेक्षा मेरा कुछ विशेष हक़ था, यह धारणा मेरे हृदयमें जमकर बैठ गई थी। उस अधिकार-मदसे मत्त होकर मैं उसपर शासन और अन्याय नहीं करता था, यह बात न थी। वह भी सहिष्णु बनकर मेरी सब तरहकी आज्ञाओंका पालन करती और सज़ा मंजूर कर लेती थी। मुहल्लेमें उसके रूपकी प्रशंसा थी—परन्तु मुझ जैसे उजड्ड लड़केकी दृष्टिमें उस सौन्दर्यका कुछ गौरव न था,—मैं समझता था, सुरबालाने केवल मेरे ही प्रभुत्वको माननेके लिए अपने पिताके घर जन्म लिया है, इसीलिए वह मेरे लिये विशेष उपेक्षाकी वस्तु है।

मेरे पिता चौधरी ज़मींदारके यहां नायब थे। उनकी इच्छा थी कि लिखाईमें मेरा हाथ सध जानेपर मुझे ज़मींदारी सरिश्तेका काम सिखाकर कहींपर गुमाश्तेके कामपर लगा देंगे, परन्तु मैं मन-ही-मन इस बातसे नाराज़ था। हमारे मुहल्लेका नीलरतन जैसे कलकत्ते भागकर वहां पढ़-लिखकर कलेक्टर साहबके नीचे नाज़िर बन गया है, मेरे जीवनका लक्ष्य भी वैसा ही बहुत ऊँचा था—कलेक्टरका नाज़िर न हो सका, तो दूसरी किसी अदालतका हेडक्लार्क बनूंगा, यह मैंने मन-ही-मन निश्चय कर रक्खा था।

मैं हमेशा देखता कि मेरे बाप उक्त अदालत-जीवियोंका अत्यन्त सम्मान करते थे,—नाना उपलक्षोंमें मछली, साग-तरकारी, रुपये-पैसे आदिसे उन लोगोंकी पूजार्चना की जाती थी, यह भी मुझसे छिपा नहीं था, इसीलिए अदालतके छोटे-से-छोटे कर्मचारी, यहां तक कि पियादों तकको अपने हृदयमें मैंने खूब सम्मानका आसन दे रक्खा था। ये हमारे देशके पूज्य देवता हैं। 'तेतीस-कोटि' के छोटे-छोटे नये संस्करण हैं। ज़मीन-जायदाद-सम्बन्धी सिद्धि-लाभके लिये तो स्वयं सिद्धिदाता गणेशसे भी इनपर लोगोंका आन्तरिक भरोसा बहुत ज्यादा है, इसलिये पहले गणेशका जो कुछ हक़ था, आजकल वह सब इन्हें ही मिला करता है।

मैं भी नीलरतनके दृष्टान्तसे उत्साहित होकर एक दिन मौक़ा पाकर कलकत्ते भाग गया। पहले गाँवके एक जान-पहचानवालेके यहां ठहरा। उसके बाद, फिर बापसे भी अध्ययनके लिये कुछ-कुछ सहायता मिलने लगी। पढ़ाई नियमसे होने लगी।

इसके अलावा सभा-समितियोंमें भी शामिल होता था। देशके लिये सहसा प्राण-विसर्जन करनेकी बहुत ही शीघ्र आवश्यकता है, इसमें मुझे सन्देह न था। परन्तु किस तरह यह दुःसाध्य कार्य हो सकता है, मैं जानता न था; और न कोई दृष्टान्त ही दिखाता था।

परन्तु फिर भी उत्साहमें कोई कमी नहीं थी। हम लोग गमई-गाँवके लड़के थे, कलकत्तेके लड़कोंकी तरह सब बातोंको हँसीमें उड़ाना नहीं जानते थे, इसलिये हमारी निष्ठा अत्यन्त दृढ़ थी। हमारी सभाके संचालकगण व्याख्यान दिया करते थे, और हम लोग चन्देका खाता लेकर बिना खाये-पिये धोरी-दुपहरीमें यों ही घर-घर भीख माँगते फिरते थे, सड़कके किनारे खड़े होकर विज्ञापन बाँटा करते, सभा-स्थलमें जाकर बेंच, चौकी वगैरह लगाते, और सभाध्यक्षके नामपर यदि कोई एक बात कह देता, तो उससे कमर बाँधकर लड़नेको तैयार हो जाते थे। शहरके लड़के इन सब लक्षणोंको देखकर हम लोगोंको गाँवके गँवार कहने लगते थे।

नाज़िर, सरिश्तेदार बनने आया था, पर मेज़िनी गैरिबाल्डी होनेकी तैयारियाँ करने लगा!

इतनेमें मेरे पिता और सुरबालाके पिता दोनों एकमत होकर सुरबालाके साथ मेरे विवाहकी तैयारियाँ करने लगे।

मैं पन्द्रह वर्षकी उमरमें कलकत्ते भाग आया था, तब सुरबालाकी उमर आठ सालकी थी; अब मैं अठारह बरसका हूँ। पिताका मत है, मेरी ब्याहकी उमर क्रमशः बीतती जा रही है, परन्तु इधर मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली है कि आजीवन विवाह नहीं करूँगा और

स्वदेशके लिए मर मिटूँगा,—पिताजीसे कह दिया—विद्याभ्यास समाप्त किये बिना विवाह न करूँगा।

दो-ही-चार महीनेमें खबर मिली कि वकील रामलोचन बाबूके साथ सुरबालाका विवाह हो गया। पतित भारतके लिए मैं तब चन्दा-वसूलीके काममें मशगूल था, यह खबर बहुत ही मामूली-सी जान पड़ी।

एन्ट्रेन्स पास कर चुका हूं, फर्स्ट आर्टसकी परीक्षा देनेवाला था, इतनेमें पिताजीकी मृत्यु हो गई। घरमें सिर्फ मैं ही अकेला न था, माता और दो बहनें भी थीं, इसलिए काम-काजकी टोहमें घूमना पड़ा। बड़ी कोशिशसे नोआखाली विभागके एक छोटेसे कस्बेमें एक स्कूलकी सेकेण्ड-मास्टरी मिली।

सोचा, अपने योग्य काम मिल गया, अच्छा ही हुआ। उपदेश और उत्साह देकर एक-एक विद्यार्थीको भावी भारतका सेनापति बना दूँगा।

काम शुरू कर दिया। देखा कि भावी भारतकी अपेक्षा आसन्न (निकट) इम्तिहानकी हड़बड़ी बहुत ज्यादा है। छात्रोंको 'ग्रामर' और 'एलजब्रा' के अलावा बाहरकी और कोई बात समझानेसे हेडमास्टर साहब नाराज़ होते हैं। दो ही महीनेके अन्दर मेरा उत्साह ठंढा पड़ गया।

मुझ जैसे प्रतिभाहीन लोग घर बैठे अनेक तरहकी कल्पनाएँ किया करते हैं, परन्तु अन्तमें कार्यक्षेत्रमें उतरनेके बाद कंधेपर जब हल रखा जाता है और पीछेसे पूँछ मरोड़ी जाती है, तब सिर झुकाये सहिष्णुताके

साथ दिन-भर खेत जोतनेका काम करनेके बाद शामको जो भर-पेट भूसा मिल जाता, उसीमें सन्तुष्ट रहते हैं, फिर उछल-कूद और उत्साह कुछ भी नहीं रहता।

आग लगनेकी आशंका रहती, इससे एक मास्टरको स्कूलमें ही रहना पड़ता था। मैं छड़ीदा आदमी था, अतः मेरे ही ऊपर यह भार आ पड़ा। स्कूलसे सटी हुई एक छोटीसी झोपड़ी थी, उसीमें मैं रहने लगा।

स्कूल कस्बेसे बाहर कुछ दूरपर था—एक बड़े तालाबके किनारे। चारों तरफ़ सुपारी, नारियल और मदारके पेड़ थे, और स्कूलसे बिलकुल सटे हुए दो बड़े-बड़े नीमके पेड़ थे, जिनकी छायासे स्कूलके लोग काफ़ी फ़ायदा उठाते थे।

एक बातका उल्लेख करना रह गया, और अब तक उसे मैं उल्लेख-योग्य समझता भी न था। यहांके सरकारी वकील रामलोचन रायका मकान हमारे स्कूलसे नज़दीक ही था। और उनके साथ उनकी स्त्री—मेरी बाल्य-सखी सुरबाला—भी थी, यह मुझे मालूम था।

रामलोचन बाबूके साथ मेरी जान-पहचान हो गई। सुरबालाके साथ मेरी बचपनकी जान-पहचान थी, यह बात रामलोचन बाबूको मालूम थी या नहीं, मैं नहीं कह सकता। मैंने भी उनसे इस नये परिचयमें इस सम्बन्धमें कोई बात कहना उचित न समझा। और यह बात भी कि सुरबाला किसी दिन मेरे जीवनके साथ किसी प्रकारसे विजड़ित थी, मेरे मनमें अच्छी तरह उदय न हुई।

एक दिन छुट्टीके रोज़ रामलोचन बाबूके घरपर उनसे मिलने गया

था। याद नहीं, किस विषयमें बातचीत चल रही थी, शायद वर्तमान समाजकी दुरवस्थाके सम्बन्धमें कुछ चर्चा कर रहे थे। वे इस बारेमें विशेष चिन्तित और व्याकुल थे, सो नहीं, पर यह विषय ऐसा है कि तम्बाकू पीते-पीते इस बारेमें घंटा डेढ़ घंटा अनर्गल बातें करते रहो, कुछ मालूम नहीं पड़ता।

इतनेमें बग़लके कमरेसे अत्यन्त मृदु, कुछ चूड़ियोंकी झन-झन, ज़रा कपड़ोंकी खस-खस और पैरोंकी कुछ आवाज़-सी सुनाई दी; मैं अच्छी तरह समझ गया कि खिड़कीकी सँधमेंसे कौतूहलपूर्ण नेत्रोंसे मेरी ओर कोई देख रहा है।

उसी क्षण दो आँखोंकी मुझे याद उठ आई—विश्वास, सरलता और शैशव-प्रीतिसे छलकती हुई दो बड़ी-बड़ी आँखें थीं, उनमें काले-काले तारे थे और स्थिर स्निग्ध दृष्टि थी। सहसा मेरे हृदयको किसीने कठोर मुट्ठीमें दाब लिया, और वेदनासे मेरा अन्तर अधपके फोड़ेकी तरह फड़कने लगा।

मैं अपनी झोंपड़ीमें लौट आया, पर वह वेदना बनी ही रही। लिखता, पढ़ता, और भी काम करता, पर मनका वह भाव दूर न हुआ; मन मेरा सहसा भारी बोझ बनकर छातीकी नसें पकड़कर झूलने लगा।

शामको कुछ स्थिर होकर सोचने लगा, ऐसा क्यों हुआ? मनके भीतरसे उत्तर मिला—"तुम्हारी वह सुरबाला कहाँ गई।"

मैंने उसके प्रत्युत्तरमें कहा—"मैंने तो उसे अपनी इच्छासे छोड़ दिया है। वह क्या हमेशा मेरे ही लिए बैठी रहती?"

मनके भीतरसे किसीने कहा—"तब जिसे चाहनेपर ही पा सकते थे, अब सिर दे-दे मारो, तो भी उसे एक बार आँखोंसे देखने तकका अधिकार नहीं मिल सकता! वह बाल्यावस्थाकी सुरबाला तुम्हारे कितने ही पासमें क्यों न हो, उसकी चूड़ियोंकी झनकार सुनो, उसके सिरमें तेल डालनेकी गन्धका अनुभव करो, परन्तु बीचमें एक दीवाल हर हालतमें रहेगा ही।"

मैंने कहा—"रहने दो, सुरबाला मेरी कौन है?"

उत्तर मिला—"सुरबाला, आज तुम्हारी कोई भी नहीं है, पर सुरबाला तुम्हारी क्या नहीं हो सकती थी?"

बात तो सच है। सुरबाला मेरी क्या नहीं हो सकती थी? सबसे बढ़कर अन्तरंग हो सकती थी, सबसे ज्यादा निकटवर्ती हो सकती थी, मेरे जीवनके सम्पूर्ण सुख-दुःखोंकी भागिनी हो सकती थी; वह आज इतनी दूर है, इतनी पराई है, आज उसे देखने तकको मनाही है, उससे बात करनेमें भी दोष है, उसके विषयमें चिन्ता करना भी पाप है! और एक रामलोचन नामका अनजान आदमी अचानक आ धमका, और सिर्फ़ दो-चार रटे हुए मन्त्र पढ़कर सुरबालाको दुनियाके और सबोंके पाससे क्षण-भरमें झपट्टा मारकर ले गया!

मैं मानव-समाजमें नई नीतिका प्रचार करने नहीं बैठा, समाज तोड़ने नहीं आया, बन्धन तोड़ना नहीं चाहता। मैं सिर्फ़ अपने मनके असली भावोंको व्यक्त करना चाहता हूं। अपने मनमें जो भाव उठा करते हैं, वे क्या सभी विवेचना करने योग्य होते हैं? रामलोचनके घरमें दीवालकी ओटमें जो सुरबाला खड़ी हुई थी, वह

रामलोचनकी अपेक्षा मेरी ही अधिकतर थी, इस धारणाको मैं मनसे किसी भी तरह दूर नहीं कर सकता था। ऐसी चिन्ता बहुत ही असंगत और अन्याययुक्त है, इस बातको मानता हूं, परन्तु यह अस्वाभाविक नहीं है।

अब मेरा किसी काममें मन नहीं लगता। दोपहरको जब क्लासके लड़के गुनगुनाकर पढ़ा करते थे, बाहर जब धू-धू लू चलती थी, गरम हवा जब नीमकी पुष्प-मंजरियोंकी सुगन्ध बहा लाती थी, तब मेरी इच्छा होती थी—क्या इच्छा होती थी, मालूम नहीं—हां, इतना कह सकता हूं कि भारतवर्षके इन सब भावी आशास्पदोंको उनकी व्याकरणकी भूलें बताकर जिन्दगी बसर करनेकी इच्छा बिलकुल नहीं होती थी।

स्कूलकी छुट्टी हो जानेपर उस सुनसान बड़े घरमें अकेले मेरा मन नहीं लगता था, और अगर कोई भलामानस मिलने आता, तो वह भी नागवार गुज़रता। सन्ध्याके समय तालाबके किनारे सुपारी और नारियलके पेड़ोंकी अर्थहीन मर्मरध्वनि सुनते-सुनते सोचता—मनुष्य-समाज एक जटिल भ्रमका जाल है। ठीक वक्तपर ठीक काम करनेकी किसीको भी याद नहीं रहती, उसके बाद बेठीक वक्तपर बेठीक वासानाएँ लेकर तड़पता रहता है।

तुम सरीखा आदमी सुरबालाका पति बनकर बुढ़ापे तक खूब सुखसे रह सकता था, सो तुम बनने चले गैरिबाल्डी, और हुए आख़िर एक गमई-गांवके स्कूलके सेकेन्ड मास्टर! और रामलोचन राय वकील हैं, उन्हें ख़ास तौरसे सुरबालाके पति बननेकी कोई विशेष

आवश्यकता न थी; विवाहके एक क्षण पहले उनके लिये जैसी सुरबाला थी, वैसी ही भवशङ्करी। वही रामलोचन आज बिना कुछ सोचे-समझे सुरबालाके साथ विवाह करके सरकारी वकील बनकर मज़ेमें रुपये पैदा कर रहा है,—जिस दिन दूधमें ज़रा धूएँकी बू आती है, उस दिन सुरबालाका तिरस्कार करता है, और जिस दिन मन प्रसन्न रहता है, उस दिन सुरबालाके लिये गहने बनवा देता है। खूब मोटा-ताज़ा है, चपकन पहनता है, किसी प्रकारका असन्तोष नहीं, तालाबके किनारे बैठकर आकाशके तारोंकी ओर देखकर किसी दिन हाय-तोबा करके सन्ध्या नहीं बिताता।

रामलोचन किसी भारी मुकदमेके कामसे कहीं बाहर गये हुए थे। स्कूलवाले घरमें जैसा मैं अकेला था, उस दिन सुरबालाके घर सुरबाला भी शायद वैसी ही अकेली थी।

याद है, उस दिन सोमवार था। सवेरे बादल हो रहे थे। क़रीब दस बजेसे टप-टप मेह बरसना शुरू हुआ। बादलोंकी हालत देखकर हेडमास्टरने जल्दी स्कूलकी छुट्टी कर दी। काले बादलोंके टुकड़े मानो किसी एक महा आयोजनके लिए तमाम आकाशमें दिन-भर इधर-से-उधर दौड़-धूप करते रहे। उसके दूसरे दिन शामको मूसलाधार वर्षा और साथ-साथ आँधी भी शुरू हुई। जितनी रात होने लगी, वर्षा और आँधीका वेग उतना ही बढ़ता गया। पहले पुरवैया हवा चलती रही, फिर क्रमशः उत्तर और उत्तर-पूर्वकी हवा चलने लगी।

ऐसी रातको सोनेकी कोशिश करना व्यर्थ है। याद उठ आई—आजकी रातमें इस आँधी-मेहमें सुरबाला घरमें अकेली होगी।

हमारा स्कूलवाला घर उसके घरसे कहीं मज़बूत है। कितनी ही बार सोचा—उसे स्कूलवाले घरमें बुला लूँ और मैं तालाबके किनारे रात बिताऊँ, परन्तु किसी भी तरह मन शान्त न हुआ।

रातके क़रीब एक-डेढ़ बजे होंगे, सहसा बाढ़ आनेका शब्द सुनाई दिया—मानो समुद्र दौड़ा आ रहा हो। घरसे बाहर निकला। सुरबालाके घरकी ओर चला। रास्तेमें तालाबकी मेंड़ है—वहाँ तक पहुँचनेमें मुझे घुटनों तक पानी पड़ा। मैंने मेंड़के ऊपर चढ़कर देखा, तो वहाँ और एक तरंग आ उपस्थित हुई। हमारे तालाबकी मेंड़का कुछ हिस्सा लगभग ग्यारह हाथ ऊँचा होगा।

मेंड़पर मैं जिस समय चढ़ने लगा, उसी समय दूसरी ओरसे एक और आदमी चढ़ा। वह आदमी कौन था, यह मेरी सम्पूर्ण अन्तरात्माने, मेरे सिरसे लेकर पैर तक सम्पूर्ण अंगोंने, जान लिया। और उसने भी मुझे पहचान लिया, इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं।

और सब कुछ पानीमें डूब चुका था, सिर्फ़ हम ही दोनों जने उस पाँच-छः हाथके द्वीपमें खड़े रहे।

तब प्रलयका समय था, आकाशमें प्रकाश न था, संसारके सारे प्रदीप बुझ चुके थे—तब एकआध बात कर लेनेमें भी कोई हानि नहीं थी—परन्तु एक भी बात मुँहसे न निकली। किसीने किसीकी भी कुशल तक न पूछी!

दोनों जने सिर्फ़ अन्धकारकी तरफ़ देखते रहे। पैरोंके नीचे घोर कृष्णवर्ण उन्मत्त मृत्यु-स्रोत गरजता हुआ प्रवाहित हो रहा था।

आज सम्पूर्ण विश्व-संसारको छोड़कर सुरबाला मेरे पास आकर

खड़ी हुई है। आज मेरे सिवा सुरबालाका संसारमें और कोई भी नहीं है। एक दिन शैशवकालकी वह सुरबाला न जाने किस जन्मान्तरसे—किस पुराने रहस्यान्धकारसे—बहकर इस सूर्य-चन्द्रालोकित लोक-परिपूर्ण पृथ्वीपर मेरे पास आ लगी थी, और आज कितने दिनों बाद उसी आलोकमय लोकमय पृथ्वीको छोड़कर इस भयानक जनशून्य प्रलयान्धकारमें सुरबाला अकेली मेरे ही पास आ उपस्थित हुई है। जन्म-स्रोतने जिस नव-कलिकाको मेरे पास ला पटका था, अब मृत्यु-स्रोत उसी विकसित पुष्पको मेरे ही पास ले आया है—अब सिर्फ और एक लहरके आते ही पृथ्वीके इस टुकड़ेसे—विच्छेदके इस डंठलसे—टूटकर हम दोनों एक हो जायँगे।

वह लहर न आवे! पति-पुत्र-गृह-धन-परिवारको लेकर सुरबाला चिरकाल तक सुखसे रहे! मैंने इसी 'एक रात्रि' में महाप्रलयके तटपर खड़े-खड़े अनन्त आनन्दका आस्वाद पाया है।

रात क़रीब खत्म हो आई—आँधी थम गई, पानी घट गया—सुरबालाने कुछ भी न कहा, चुपचाप घरकी ओर चल दी, मैं भी बिना कुछ कहे-सुने चुपकेसे अपने घर लौट आया।

सोचने लगा—मैं नाज़िर भी न हुआ, सरिश्तेदार भी न हुआ, गैरिबाल्डी भी न हो सका, मैं एक टूटे-फूटे स्कूलका सेकेन्ड-मास्टर हूं। मेरे इस सारे जीवनमें सिर्फ क्षण-भरके लिए एक अनन्त रात्रिका उदय हुआ था—मेरी परमायुके सम्पूर्ण दिनोंमें सिर्फ यही 'एक रात्रि' मेरे तुच्छ जीवनकी एकमात्र चरम सार्थकता है।

[ज्येष्ठ, १९४९

एक बरसाती कहानी

सुदूर समुद्रके बीच एक द्वीप है। वहां सिर्फ़ ताशके बादशाह, ताश ही की बेगम, इक्का और गुलाम रहते हैं। दुक्की-तिक्कीसे लेकर नहला-दहला तक और भी अनेक गृहस्थोंके घर हैं, पर वे उच्चजातीय नहीं।

इक्का, बादशाह और गुलाम, ये तीन ही प्रधान वर्ण हैं; नहला-दहला आदि अन्त्यज हैं, उनके साथ एक पंक्तिमें बैठनेके योग्य नहीं।

परन्तु शृङ्खला बड़ी अच्छी है। किसका कितना मूल्य और सम्मान है, यह बहुत पहलेसे ही निश्चित हो चुका है, उसमेंसे तनिक भी इधर-उधर नहीं हो सकता। सभी कोई निर्दिष्ट नियमानुसार अपना अपना काम करते चले जाते हैं। यह चलना केवल वंशानुक्रमसे अपने पूर्वजोंकी लकीरपर चलना मात्र है—जैसे 'अ-आ-इ-ई'का पढ़नेवाला लड़का पट्टीपर लिखे हुए हरूफोंपर हाथ चलाता रहता है।

वह काम कौनसा है, विदेशियोंके लिए समझमें आना कठिन है।

सहसा देखनेसे खेल मालूम देगा। सिर्फ़ नियमसे चलना-फिरना, नियमसे आना-जाना और नियमसे उठना-बैठना, बस। अदृश्य हाथ उन्हें चलाते हैं और वे चलते हैं।

उनके मुँहपर किसी प्रकार भावोंका परिवर्तन नहीं है। हमेशासे एक ही भावकी मुहर लगी हुई है। जैसे आँखें फाड़-फाड़कर देखती हुई कोई तसवीर हो। बाबा आदमके ज़मानेसे अब तक, सिरकी टोपीसे लेकर पैरके जूते तक, ज्यों-के-त्यों वैसे-के-वैसे ही बने हैं।

कभी, किसीको भी कुछ सोचना नहीं पड़ता, विचारना नहीं पड़ता; सभी कोई निर्जीव-भावसे चुपचाप चला-फिरा करते हैं; गिरते समय बिना आहटके चुपकेसे गिर जाते हैं और अविचलित मुखश्रीको लिये हुए चित होकर आकाशकी ओर देखते रहते हैं।

किसीको कोई आशा नहीं, अभिलाषा नहीं, भय नहीं, नये मार्गपर चलनेकी चेष्टा नहीं, हँसी नहीं, रोना नहीं, सन्देह नहीं, दुविधा नहीं! पिंजड़ेके अन्दर जैसे चिड़िया फड़फड़ाती है, इन चित्रवत् मूर्तियोंके अन्तःकरणमें वैसा किसी जीवित प्राणीके अशान्त पश्चात्तापका लक्षण नहीं दिखाई देता।

परन्तु किसी समय इन पिंजड़ोंमें जीवोंका वास था,—तब पिंजड़ा हिलता-डुलता था, भीतरसे चिड़ियोंके पंखोंकी आवाज़ और चुहचुहाहट सुनाई पड़ती थी, गहन वन और विस्तृत आकाशकी बात याद आती थी।—अब सिर्फ़ पिंजड़ेकी संकीर्णता और सिलसिलेसे लगी हुई लोहेकी छड़ोंका ही अनुभव होता है,—चिड़ियाँ उड़ गईं, या जीवन्मृत हुई पड़ी हैं, यह कौन कह सकता है।

ग़ज़बका सन्नाटा है, बड़ी शान्ति है। पूरा आराम है, बड़ा सन्तोष है। रास्तेमें, घाटमें, घरमें, आंगनमें सर्वत्र संयत वायुमण्डल है,—कहीं कुछ शब्द नहीं, द्वन्द्व नहीं, उत्साह नहीं, आग्रह नहीं,—केवल नित्य नैमित्तिक क्षुद्र कार्य हैं और क्षुद्र विश्राम।

समुद्रने अविश्राम सुरताल (कनसर्ट) के शब्दसे, तटपर सहस्रों फेन-शुभ्र कोमल हथेलियोंके आघातसे समस्त द्वीपोंको मीठी नींद सुला रखा है—पक्षी-माताके फैले हुए नील पंखोंके समान आकाश दिग्दिगन्तकी रक्षा कर रहा है! बहुत दूर उस पार गहरी नील रेखाके समान विदेशका आभास दीख पड़ता है—वहांसे राग-द्वेषका द्वन्द्व-कोलाहल समुद्र पार होकर नहीं आ सकता।

[२]

समुद्रके उस पार उस विदेशमें किसी तिरस्कृत रानीका लड़का एक राजपुत्र रहता है। वह अपनी निर्वासित माताके साथ समुद्रके किनारे अपनी धुनमें बाल्य जीवन बिता रहा है।

वह अकेला बैठा-बैठा मन-ही-मन एक बड़ा-भारी आशाका जाल बुन रहा है। उस जालको दिग्दिगन्तरोंमें फैलाकर कल्पनासे विश्व-जगत्के नये-नये रहस्योंको फँसाकर अपने द्वारके सामने इकट्ठा करता आता है। उसका अशान्त चित्त समुद्रके किनारे आकाशकी सीमापर उस दिगन्त-रोधी नील पर्वतमालाके उस पार सर्वदा विचरण करता फिरता है—वह ढूँढ़ना चाहता है पक्षीराज घोड़ा कहां मिलता है, सर्पके

मस्तककी मणि कहां मिलती है, पारिजात पुष्प और सोनेकी लकड़ी, चाँदीकी लकड़ी कहां मिलती है, सात समुद्र तेरह नदीके उस पार दुर्गम दैत्य-भवनमें स्वप्न-सम्भवा अलोकसुन्दरी राजकुमारी कहां सो रही है ?

राजपुत्र पाठशालामें पढ़ने जाता है, वहांसे लौटकर सौदागरके पुत्रसे देश-विदेशकी बातें और कोतवालके पुत्रसे ताल-बैतालकी कहानी सुनता है।

रिमझिम-रिमझिम मेह बरसता, बादलोंसे तमाम दिशाएँ अन्धकारमय हो जातीं,—घरके द्वारपर मांके पास बैठकर समुद्रकी ओर देखता हुआ राजपुत्र कहता—"मा, कोई खूब दूर देशकी कहानी सुनाओ न, मा।" माता बहुत देर तक अपने बचपनमें सुनी हुई किसी अपूर्व देशकी अपूर्व कहानी सुनातीं—मेहके झर-झर शब्दके अन्दर उस कहानीको सुनकर राजपुत्रका हृदय उदास हो जाता।

एक दिन सौदागरके पुत्रने आकर राजपुत्रसे कहा—"मित्र, पढ़ाई तो खत्म हो चुकी, अब कहीं देश-भ्रमणके लिए जाऊँगा, तुमसे विदा लेने आया हूँ।"

राजपुत्रने कहा—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।"

कोतवालके पुत्रने कहा—"मुझे क्या अकेला ही छोड़ जाओगे ? मैं भी तुम लोगोंका साथी हूँ।"

राजपुत्रने दुःखिनी मातासे आकर कहा—"मा, मैं देश-भ्रमणके लिए जा रहा हूँ—अबकी तुम्हारा दुःख दूर करनेका उपाय कर आऊँगा।"

तीनों मित्र मिलकर चल दिये।

[३]

समुद्रमें सौदागरकी बारह नाव तैयार थीं—तीनों मित्र चढ़ लिये। दक्खिनी हवासे पाल भर गये—नावें राजपुत्रकी मनोवासनाकी तरह दौड़ती हुई चलने लगीं।

शंख-द्वीपमें जाकर एक नाव शंखोंसे भरी, चन्दन-द्वीपमें जाकर एक नाव चन्दनसे भरी, प्रवाल-द्वीपमें जाकर एक नाव प्रवालोंसे भरी।

उसके बाद और चार बरसोंमें जब गजदन्त, कस्तूरी, लौंग और जायफलसे और चार नावें भर गईं, तब सहसा एक बड़ा-भारी तूफान आया।

सब नावें डूब गईं, सिर्फ एक नाव बची, जिसने तीनों मित्रोंको एक द्वीपमें बुरी तरह पटक दिया और खुद टुकड़े-टुकड़े हो गई।

इस द्वीपमें ताशके इक्के, ताशके बादशाह, ताशकी बेगम और ताश ही के गुलाम यथानियम रहते हैं, और दहला-नहला आदि भी उनकी सेवा बजाते हुए नियमानुसार दिन काटते हैं।

[४]

ताशके राज्यमें अब तक कोई उपद्रव न था। अब पहले-पहल यह विशृङ्खलताका सूत्रपात हुआ है।

इतने दिनोंके बाद यह तर्क उठा—ये तीन आदमी, जो सहसा एक दिन शामको समुद्रसे निकलकर आये हैं, इन्हें किस श्रेणीमें रखा जाय।

पहले तो यह बात विचारणीय है कि इनकी जाति क्या है—राजा, बादशाह, गुलाम या नहला-दहला?

दूसरी बात, इनका गोत्र क्या है—हुक्म, चिड़ी, पान या ईंट?

बिना इन सब बातोंके सुलझे, इनके साथ किसी तरहका व्यवहार करना ही कठिन है। ये किनका अन्न खायेंगे, किनके साथ रहेंगे। इनमेंसे अधिकार-भेदसे कौन वायुकोणमें, कौन नैऋतकोणमें, कौन ईशानकोणमें सिरहाना रखकर और कौन खड़े-खड़े सोयेगा, इन सब बातोंका कुछ भी निर्णय नहीं होता।

इस राज्यमें इतनी बड़ी विषम दुश्चिन्ताका कारण इससे पहले कभी नहीं आया।

परन्तु भूखके मारे तड़पते हुए विदेशी मित्रोंको इन सब महान विषयोंकी रंच-मात्र भी चिन्ता नहीं थी। उन्हें किसी तरह भोजन मिल जाय, तो लाखों पायें। जब देखा कि लोग उन्हें भोजनादि देनेमें संकोच करने लगे, और विधि-विधान ढूँढ़नेके लिए इन्होंने विराट् सभाएँ कीं, तब वे, जहाँ जो कुछ मिला, खाने-पीने लगे।

इस व्यवहारसे दुक्की-तिक्की तक दंग रह गईं। तिक्कीने कहा—"भई चौका, इनको कोई परहेज-विचार नहीं है।" दुक्कीने कहा—"भई तिक्की, इससे तो साफ़ मालूम पड़ता है कि ये हम लोगोंसे भी नीच जातिके हैं।"

खा-पीकर ठंडे होकर तीनों मित्रोंने देखा, यहाँके आदमी कुछ नये ही ढंगके हैं। मानो संसारमें इनकी कहीं भी जड़ नहीं है।

मानो इनकी चोटी पकड़कर किसीने उखाड़ ली है, और वे हतबुद्धिकी तरह संसारका स्पर्श त्यागकर झूम-झूमकर घूम रहे हैं। जो-कुछ भी करते हैं, वह मानो कोई दूसरा ही करा रहा है। इनका ठीक पुतलीके नाचकी झूलती हुई पुतलियोंका-सा हाल है। इसीसे किसीके मुँहपर कोई भाव नहीं—चिन्ता नहीं—सभी कोई अत्यन्त गम्भीर चालसे उसी एक ही नियमसे चल-फिर रहे हैं। फिर भी, सब मिलकर ये बड़े अद्‌भुत दिखाई दे :

चारों तरफ़ इस जीवित निर्जीवताके गम्भीर रंग-ढंग देखकर राजकुमार आकाशकी ओर मुँह उठाकर क़हक़हा मारकर हँस पड़ा। यह आन्तरिक कौतूहल-पूर्ण उच्च हास्यध्वनि ताश-राज्यके सुनसान रास्तेमें बड़ी विचित्र सुनाई दी। यहाँके सभी कोई ऐसे सुगम्भीर हैं कि कौतूहल अपने अकस्मात् निकले हुए उच्छृङ्खल शब्दसे आप ही चकित हो गया—म्लान होकर बुझ गया—चारों तरफ़का लोक-प्रवाह पहलेसे कहीं दूना स्तब्ध और गम्भीर मालूम होने लगा।

दोनों मित्रोंने व्याकुल होकर राजपुत्रसे कहा—"मित्र, इस निरानन्द भूमिपर एक क्षण नहीं रहा जा सकता! यहाँ और दो-चार दिन रह गये, तो बीच-बीचमें अपनेको स्पर्श करके देखना पड़ेगा कि ज़िन्दा हैं या मुरदा।"

राजपुत्रने कहा—"नहीं भइया, मुझे बड़े मज़े आ रहे हैं। देखनेमें ये आदमी जैसे लगते हैं—इनमें एक-आध बूँद जीवित पदार्थ है या नहीं, एक बार हिला-डुलाकर देखना होगा ।

[५]

इसी तरह कुछ समय बीता, परन्तु तीनों विदेशी युवक किसी नियमके जालमें पकड़ाई न दिये। वहाँ अब जिस समय उठना, बैठना, मुँह फेरना, औंधे होना, चित होना, सिर हिलाना, कलाबाज़ी खाना चाहिए, ये उनमें से कोई काम भी न करते, बल्कि मज़े ले-लेकर देखते और हँसते हैं। इन सब यथाविहित असंख्य क्रिया-कलापोंमें कोई महान् गम्भीरता हो सकती है, यह बात उनके दिमाग़में भी न आती।

एक दिन इक्का, बादशाह और गुलामने आकर राजपुत्र, कोतवाल और सौदागरके पुत्रसे, फूटे बासनकी तरह बजकर, बड़ी गम्भीरतासे पूछा—"तुम लोग नियमके अनुसार क्यों नहीं चलते?"

तीनों मित्रोंने उत्तर दिया—"हमारी तबीयत।"

ताश-राज्यके अधिनायकने बड़े आश्चर्यके साथ, मानो सपनेसे जगकर पूछा—"तबीयत! वह ससुरी कौन है?"

तबीयत क्या चीज़ है, वह न समझ सका; पर पीछे धीरे-धीरे समझ गया। वे प्रतिदिन देखने लगे कि इस तरह न चलकर उस तरह चलना भी सम्भव है; जैसे 'इधर' है, वैसे 'उधर' भी है। विदेशसे तीनों जीते-जागते दृष्टान्तोंने आकर समझा दिया कि विधानके अन्दर ही मनुष्यकी सम्पूर्ण स्वाधीनताकी सीमा नहीं है। इसी तरह वे 'तबीयत' नामकी एक राजशक्तिके प्रभावको अस्पष्टरूपसे अनुभव करने लगे।

ज्यों ही उसका अनुभव हुआ, त्यों ही ताश-राज्य इस छोरसे उस

ओर तक कुछ-कुछ आन्दोलित होने लगा—सोये हुए बड़े भारी अजगरकी बहुतसी कुण्डलियोंके अन्दर जिस तरह अत्यन्त मन्द गतिसे आलस्य संचालन करता है।

[६]

निर्विकार मूर्ति बेगमने इतने दिनों तक किसीकी ओर न देखा था, चुपचाप बिना किसी घबराहटके अपना काम कर रही थीं। अब, एक दिन वसन्तकी सन्ध्याको इनमेंसे एकने अपनी आँखोंकी काली-काली बरुनियोंको ऊपर उठाकर चकितकी तरह राजपुत्रकी ओर मुग्ध और कटाक्षपूर्ण नेत्रोंसे देखा। राजपुत्र चौंककर बोल उठा—"अरे, यह क्या देख रहा हूँ! मैं तो समझता था कि ये मूर्तिवत् हैं, मैं ग़लत समझा, यह तो रमणी है!"

दोनों मित्रोंको एकान्तमें ले जाकर राजकुमारने कहा—"भई, इनमें तो बड़ा माधुर्य है। उसके उस नवीन भावोद्दीप्त कृष्ण नेत्रोंके प्रथम कटाक्षसे मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मैंने किसी नये जगतमें प्रथम उषाका प्रथम उदय देखा! इतने दिनों तक धैर्यके साथ रहना आज सार्थक हुआ।"

दोनों मित्र बड़े कौतूहलके साथ हँसते हुए बोले—"सचमुच!"

वह अभागिन पानकी बेगम आये दिन नियमोंको भूलने लगी। उसे अब जहां हाज़िर होना चाहिए, वह न हो सकती, बार-बार भूल होने लगी। मान लो, अब उसे गुलामके बगलमें पंक्तिवार खड़ा होना

चाहिये, तब वह सहसा राजपुत्रके बगलमें आकर खड़ी हो जाती, गुलाम अविचलभावसे गम्भीर स्वरमें कहता—"बीबी, तुम भूल गईं।" सुनकर पानकी बेगमका स्वभावतः रक्त-कपोल और भी सुर्ख हो जाता, उसकी निर्निमेष प्रशान्त दृष्टि नीचेको झुक जाती। राजपुत्र उत्तर देता—"भूल नहीं हुई है, आजसे मैं ही गुलाम हूँ।"

तुरत खिले हुए रमणी-हृदयसे यह क्या अपूर्व शोभा निकलने लगी, यह कैसा अचिन्तनीय लावण्य विकसित होने लगा। उसकी गतिमें यह कैसा सुमधुर चांचल्य है, उसकी दृष्टिमें यह कैसी हृदयकी तरंगें हैं, उसके सारे अस्तित्वसे यह कैसा सुगन्ध-युक्त आरति-उच्छ्वास उच्छ्वसित हो रहा है।

इस नवीन अपराधिनीकी भूल सुधारनेकी तरफ ध्यान देते हुए आजकल और सबोंको भी भ्रम होने लगा है। इक्का अपने समीचीन मानकी रक्षा करना भूल गया, बादशाह और गुलाममें अब कोई भेदभाव न रहा, नहला-दहला तक न जाने कैसे हो गये हैं!

इस पुराने द्वीपमें वसन्तकी कोयल बहुत बार बोली है; पर अबकी बार जैसी बोली है, ऐसी और कभी नहीं बोली। समुद्र हमेशासे एक ही तरहका स्वर अलापता आ रहा है, इतने दिनोंसे वह सनातन विधानकी अलंघनीय महिमा एकस्वरसे गाता आया है, किन्तु आज वह सहसा दखिनी हवासे चंचल उठती हुई विश्वव्यापी यौवन-तरंगोंकी तरह प्रकाश और छायामें, भाव और भाषामें अपनी अथाह आकुलता व्यक्त करनेकी कोशिश करने लगा।

[७]

क्या यही वह इक्का है, यही वह बादशाह है ! यह वही गुलाम है ! कहां गई वह परितुष्ट परिपुष्ट सुगोल मुखच्छवि ! कोई आकाशकी ओर देखता है, तो कोई समुद्रके किनारे बैठा है ; किसीको रातमें नींद नहीं आती, तो किसीको भोजन नहीं रुचता ।

मुँहपर किसीके ईर्ष्या है, तो किसीके अनुराग ; किसीके व्याकुलता है, तो किसीके संशय । कहीं हँसी है, तो कहीं रोना, कहीं संगीत । सभी कोई अपनी-अपनी ओर और दूसरोंकी ओर देख रहे हैं । सभी कोई अपने साथ दूसरोंकी तुलना कर रहे हैं ।

इक्का सोच रहा है कि युवक बादशाह वैसे देखनेमें तो बुरा नहीं है, पर उसके मुँहपर सुन्दरता नहीं—मेरे चाल-चलनके अन्दर ऐसा एक माहात्म्य है कि बाज़-बाज़ आदमीकी निगाह मेरी तरफ़ बिना खिंचे रह ही नहीं सकती ।

बादशाह सोच रहा है कि इक्का हमेशा बड़े मिज़ाजसे गरदन टेढ़ी किये इठलाता है ; वह समझता है कि उसे देखकर बेगमोंकी छाती फटती होगी !—मन-ही-मन कहता हुआ ज़रा तिरछी हँसी हँसकर दर्पणमें अपना मुँह देखता है ।

देश-भरमें जितनी भी बेगम थीं, सब खूब शृङ्गार करतीं और परस्पर एक दूसरीसे कहतीं—"अरे, बस, रहने भी दो ! मरीं क्यों जातीं हो ? मानिनियोंकी इतनी सज-धजकी धूम किस लिए ? उसका रंग-ढंग देखकर तो शरम आती है ।"—कहकर दूने प्रयत्नसे हाव-भाव फैलाती रहतीं हैं ।

और, कहीं दो सखा, तो कहीं दो सखियां मिलकर गलबहियां डाले एकान्तमें बैठी हुई गुप्त बातचीत कर रही हैं। कभी हँसतीं, तो कभी रोती हैं; कभी गुस्सा होतीं, तो कभी मान-अभिमान चलता, और पीछेसे फिर मनाती फिरती हैं।

युवकगण सड़कके किनारे वनकी छायामें पेड़ोंकी जड़से पीठ लगाये ज़मीनपर पड़े हुए सूखे पत्तोंपर पैर पसारे आलसमें बैठे रहते हैं। बालायें सुनील वस्त्र पहने उस छाया-पथसे अपनी धुनमें चलतीं-फिरतीं और वहां आकर मुँह झुकाकर आँखें फेर लेतीं; मानो किसीको देखा ही नहीं है, मानो किसीको दिखाने नहीं आई हैं, ऐसा हाव-भाव दिखलाती हुई चली जाती हैं।

यह सब देखकर कोई-कोई पागल युवक दुःसाहसकी लकड़ी टेकता हुआ जल्दी-जल्दी पास पहुँचता, किन्तु मनके पसन्दकी एक भी बात याद नहीं आती, शर्मिन्दा होकर खड़ा रह जाता, अनुकूल अवसर निकल जाता, और रमणी भी अतीत क्षणकी तरह क्रमशः दूर जाकर विलीन हो जाती।

सिरपर चिड़ियां बोलती रहतीं, पवन अंचल और फैले हुए घुँघराले बालोंको उड़ाती हुई सनसनाती चली जाती, वृक्षोंके पल्लव झरमर मरमर करते रहते, और समुद्रकी अविश्राम उच्छ्वसित ध्वनि हृदयकी अव्यक्त वासनाको दूनी बढ़ा देती है।

एक वसन्तमें तीन विदेशी युवकोंने आकर सूखी गंगामें ऐसा ही एक भारी तूफान उठा दिया।

[८]

राजपुत्रने देखा कि ज्वार-भाटा—उतार-चढ़ावके बीचमें सारा देश थरथरा रहा है,—मुँहपर बात किसीके नहीं, केवल एक दूसरेकी मुँह-देखादेखी, सिर्फ़ एक क़दम बढ़ना और दो क़दम पीछे हटना है, केवल अपने मनकी वासनाओंका ढेर लगाकर बालूके महल चिनना और तोड़ना है। सभी अपने घरके कोनेमें बैठकर अपनी अग्निमें अपनी ही आहुति दे रहे हैं, दिनपर दिन कृश और वाक्यहीन होते जा रहे हैं। सिर्फ आँखें दोनों जल रही हैं और अन्तःकरणकी वाणीके आन्दोलनसे ओष्ठाधर वायुसे कम्पित पल्लवोंकी तरह काँप रहे हैं।

राजपुत्रने सबको बुलाकर कहा—"बंशी लाओ, तुरही-भेरी बजाओ, सब आनन्दध्वनि करो, पानकी बेगमका स्वयंवर होगा।"

उसी समय नहले-दहलेने अपनी-अपनी बंसियोंमें फूँक देनी शुरू कर दी, दुक्की-तिक्की तुरही-भेरी लेकर चिपट गई। सहसा इस तुमुल आनन्द-तरंगसे वह कानाफूँसी मुँह देखादेखी बन्द हो गई।

उत्सवमें स्त्री-पुरुष सब एकत्र मिलकर कितनी बातें, कितनी हँसी, कितना मज़ाक करने लगे! मसखरी-मसखरीमें कितनी मनकी बातें कहीं, व्यंग्य-ही-व्यंग्यमें कितना अविश्वास दिखाया, उस हास्यमें कितनी तुच्छ बातें होती रहीं। घने जंगलमें जोरोंकी हवा चलनेपर जैसे शाखाओं-शाखाओंमें, पत्तों-पत्तोंमें, लता और वृक्षोंमें परस्पर नाना प्रकारसे हिलना-डुलना मिलना-जुलना होता रहता है, इनमें भी वैसा ही होने लगा।

ऐसे कोलाहल और आनन्दोत्सवके समय वंशीमें सबेरेसे बड़े मधुरस्वरमें शहाना बजने लगी। उस आनन्दमें गम्भीरताका, मिलनमें व्याकुलताका, विश्वहृदयमें सुन्दरताका और हृदयोंमें प्रीतिकी वेदनाका संचार होने लगा। जो अच्छी तरह प्रेम नहीं करते थे, वे खूब प्रेम करने लगे, और जो प्रेम करते थे, वे आनन्दमें उदास हो गये।

पानकी बेगम कपड़े पहनकर तमाम दिन एक गुप्त छाया-कुंजमें बैठी थी। उसके कानोंमें भी दूरसे शहानाकी तान प्रवेश कर रही थी, और आँखें उसकी मुँदी जाती थीं; सहसा उसने आँखें खोलकर देखा, तो सामने राजपुत्र बैठा हुआ उसके मुँहकी तरफ़ देख रहा है; उसे कँपकँपी आ गई, दोनों हाथोंसे अपना मुँह ढककर वह ज़मीनपर धूलमें लोटने लगी।

राजपुत्र दिन-भर अकेले समुद्रके किनारे टहलते हुए उसके संत्रस्त दृष्टिपात और सलज्ज लोटनेकी बातपर मन-ही-मन आलोचना करने लगे।

रातको सैकड़ों-हज़ारों प्रदीपोंके प्रकाशमें, मालाओंकी सुगन्धमें, वंशीकी ध्वनिमें, अलंकृत सुसज्जित सहास्य श्रेणीबद्ध युवकोंकी सभामें एक बालिका धीरे-धीरे कम्पित चरणोंसे माला हाथमें लिये राजपुत्रके सामने आकर मस्तक झुकाये खड़ी हो गई। अभिलषित कण्ठ तक माला भी न पहुँची, अभिलषित मुँहकी ओर आँखें भी न उठा सकी। राजपुत्रने तब स्वयं ही सिर झुका दिया, और माला स्खलित होकर उनके कण्ठमें पड़ गई। चित्रवत् निस्तब्ध सभा सहसा आनन्दोच्छ्वाससे गुंजायमान हो उठी।

सबने वर-वधूको बड़े आदरके साथ सिंहासनपर बिठाया। राजपुत्रका सबने मिलकर राज्याभिषेक किया।

समुद्र-पारकी दुःखिनी निर्वासित रानी सोनेकी नावपर बैठकर पुत्रके नवीन राज्यमें आ गईं।

तसवीरोंका गुट्ट सहसा आदमी बन गया। अब यहां पहलेकी तरह अविच्छिन्न शान्ति और अपरिवर्तनीय गम्भीरता नहीं है। संसार-प्रवाहने अपने सुख-दुःख, राग-द्वेष, सम्पद्-विपदके साथ-साथ इस नवीन राजाके नये राज्यको परिपूर्ण कर डाला है। अब कोई अच्छा है, कोई बुरा है, किसीको विषाद है—अब सब आदमी हैं। अब सब अलंघ्य विधि विधानके अनुसार निरीह नहीं, किन्तु अपनी इच्छानुसार सज्जन और दुर्जन हैं।

[आषाढ़, १६४६]

जीवित और मृत

पहला परिच्छेद

रानीहाटके ज़मींदार शारदाशंकर बाबूके घरकी विधवा बहू बेचारीके मायकेमें कोई न था; सभी एक-एक करके मर चुके थे। ससुरालमें भी ठीक अपना कहनेको कोई नहीं है; न पति है, न पुत्र। एक जेठौत है, शारदाशंकरका छोटा लड़का; वही उसकी आँखोंका तारा है। उसके पैदा होनेके बाद उसकी माँको बड़ी सख्त बीमारीने घेर लिया था, उसमें वह बहुत दिनों तक कष्ट पाती रही, इसलिए इस विधवा चाची कादम्बिनीने ही उसे पाल-पोसकर बड़ा किया है। पराये लड़केको पाल-पोसकर बड़ा करनेसे उसपर हृदयका खिंचाव—स्नेह—मानो और भी बढ़ जाता है; कारण, उसपर कोई अधिकार नहीं रहता—उसपर कोई सामाजिक हक़ नहीं, सिर्फ़ स्नेहका हक़ है,—किन्तु सिर्फ़ अकेला स्नेह समाजके सामने अपने हक़को किसी दलीलके अनुसार प्रमाणित नहीं कर सकता, और करना चाहता

भी नहीं ; केवल वह अपने हृदयके धनको दूनी व्याकुलताके साथ चाहने लगता है।

विधवा कादम्बिनीने, अपने सारे रुके हुए स्नेहको इस छोटेसे बच्चेपर सींचकर, एक दिन सावनकी रातको एकाएक इस लोकसे कूच कर दिया। सहसा न जाने कैसे उसके हृदयकी धुकधुकी बन्द हो गई—समय जगत्में और सब जगह ज्यों-का-त्यों चलने लगा, सिर्फ उस स्नेह-पूर्ण छोटेसे कोमल हृदयके भीतर समयकी घड़ीके पुर्जे हमेशाके लिए बन्द हो गये।

पीछे कहीं पुलिसका अड़ंगा न लग जाय, इस डरसे ज़्यादा आडम्बर न बढ़ाकर ज़मींदारके चार ब्राह्मण कर्मचारी शीघ्र ही अरथीको श्मशान ले गये।

रानीहाटका मसान गाँवसे बहुत दूर था। तालाबके किनारे एक झोंपड़ी है, और उसके पास एक बड़ा भारी बड़का पेड़ है, चारों तरफ़ मैदान-ही-मैदान नज़र आता है, और कुछ नहीं। पहले यहाँ नदी बहती थी, अब वह बिलकुल सूख गई है; उसी सूखी नदीका कुछ हिस्सा खोदकर मसानका तालाब बना दिया गया है। यहाँके लोग इस तालाबको ही उस पवित्र नदीका प्रतिनिधि-स्वरूप मानते हैं।

लाशको झोंपड़ीके भीतर रखकर चारों जने चिताके लिए लकड़ियोंके आनेकी राह देखने लगे। समय इतना लम्बा मालूम होने लगा कि अधीर होकर उनमेंसे निताई और गुरुचरण यह देखनेके लिए चल दिये कि लकड़ी आनेमें इतनी देर क्यों हो रही है। विधू और बनमाली अरथीके पास बैठे रहे।

सावनकी अँधेरी रात है। बादल घिरे हुए हैं, आकाशमें भी तारे दिखाई नहीं देते, अँधेरे घरमें दोनों जने चुपचाप बैठे हुए हैं। एकके दुपट्टेमें दियासलाई और बत्ती बँधी हुई थी। बरसातसे सर्द जानेके कारण दियासलाई बहुत जलाई, पर जली नहीं,—साथमें जो लालटेन थी, वह भी बुझ गई।

बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहनेके बाद एकने कहा—"भइया, एक चिलम तम्बाकू कहींसे मिल जाती, तो बड़ा अच्छा होता। जल्दीमें कुछ ला भी तो नहीं सके।"

दूसरेने कहा—"मैं चटसे जा कर एक दौड़में सब ला सकता हूं।"

बनमालीके भागनेके इरादेको ताड़कर विधूने कहा—"देखूँ मुँह!—और मैं यहां अकेला रह जाऊँ, क्यों?"

फिर बातचीत बन्द हो गई। पाँच मिनट एक घंटेके बराबर मालूम होने लगे। जो लकड़ी लाने गये थे, उन्हें ये मन-ही-मन गालियां देने लगे,—उनका यह सन्देह उत्तरोत्तर गहराई तक पहुंचने लगा कि वे अवश्य ही कहीं आराससे बैठे मज़ेमें तम्बाकू पीते और गप्पें मारते होंगे।

कहीं भी कोई शब्द नहीं,—सिर्फ तालाबके किनारेसे लगातार झींगुरोंकी झनकार और मेढ़कोंकी टर्र-टर्र सुनाई दे रही थी। इतनेमें ऐसा कुछ मालूम दिया, जैसे खाट कुछ हिली हो—मुरदेने मानो करवट बदला हो।

विधू और बनमाली राम-नाम जपते हुए काँपने लगे। एकाएक

झोंपड़ीमें एक गहरी उसास-सी सुन पड़ी। विधू और बनमाली उसी दम उछलकर झोंपड़ीसे बाहर निकल आये और सीधे गाँवकी तरफ़ भागे।

क़रीब डेढ़ कोस रास्ता तय करनेके बाद देखा, तो उनके दोनों साथी लालटेन हाथमें लिये लौट रहे हैं। दरअसल वे तम्बाकू ही पी रहे थे, लकड़ीके बारेमें उन्हें कुछ भी पता नहीं था, फिर भी आकर समाचार दिया—'पेड़ कटाकर लकड़ी चिरवाई जा रही हैं, बस अब जल्दी आ जायँगी।' तब विधू और बनमालीने झोंपड़ीका सारा हाल कह सुनाया। निताई और गुरुचरणको इसपर विश्वास न हुआ, और अरथीको अकेले छोड़ आनेके कारण उन दोनोंको खूब फटकार बताई।

फ़ालतू देर न करके चारों जने शीघ्र ही मसानकी उसी झोंपड़ीमें पहुंचे। भीतर जाकर देखा, तो मुर्दे़का पता नहीं, खाली खटिया पड़ी हुई है।*

एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। कहीं सियार न ले गया हो! पर वहाँ तो ऊपरका कपड़ा तक नहीं है। पता लगाते-लगाते बाहर निकलकर देखा, तो झोंपड़ीके दरवाज़ेके पास, थोड़ीसी कीच जम गई थी, उसपर किसी स्त्रीके अभी हालके और छोटे-छोटे पद-चिह्न हो रहे हैं।

शारदाशंकर कोई मामूली आदमी नहीं हैं; उन्हें यह भूतकी

* बंगालमें मुरदेको खटियासे बाँधते नहीं, यों ही कपड़ेसे ढककर ले आते हैं। —अनुवादक

कहानी सुनाकर सहसा उनसे किसी शुभ फलकी आशा करना बिलकुल असम्भव बात है। तब चारों आदमियोंने सलाह करके यही तय किया कि उनसे कह दिया जाय कि 'दाहकर्म हो गया'—बस, अब इसीमें भलाई है।

सवेरेकी होनेमें जो लकड़ियाँ लेकर आये, उन्हें समाचार मिला, 'देर होती देख रात ही में सब काम समाप्त कर दिया गया, झोंपड़ीमें लकड़ियाँ मौजूद थीं।' इस विषयमें जल्दी किसीको सन्देह भी नहीं हो सकता,—कारण लाश कोई ऐसी क़ीमती चीज़ नहीं है कि जिसे कोई धोखा देकर उड़ा ले जाय।

दूसरा परिच्छेद

सब जानते हैं कि जीवनका जब कोई लक्षण नहीं पाया जाता, तब भी बहुधा शरीरमें प्राण मौजूद रहते हैं, और यथासमय फिर उस मुरदा-से शरीरमें उसका कार्य शुरू हो जाता है। कादम्बिनी भी मरी न थी—सहसा किसी कारणसे उसके जीवनकी क्रिया बन्द हो गई थी।

जब वह सचेतन हो उठी, तो देखा कि उसके चारों तरफ़ घोर अन्धकार-ही-अन्धकार है। हमेशा जहाँ वह सोती थी, मालूम हुआ कि यह वह स्थान नहीं है। एक बार उसने पुकारा—"जीजी"—अँधेरे घरमें किसीने उत्तर न दिया। डरते-डरते उठकर बैठी, उस मृत्यु-शय्याकी बात याद आते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। ओःफ़, सहसा छातीके भीतर कैसी भीषण वेदना उठी थी—दम घुट रहा

था। उसकी जिठानी घरके एक कोनेमें बैठी अँगीठीपर लल्लूके लिये दूध गरम कर रही थी,—कादम्बिनीसे मारे दर्दके खड़ा न रहा गया, वह पछाड़ खाकर बिछौनेपर गिर पड़ी,—उसने रुँधे हुए स्वरसे कहा—"जीजी, ज़रा लल्लूको ले आओ—मेरा जी घबरा रहा है।" उसके बाद सब काला स्याह हो गया—मानो किसी लिखी हुई कापीपर स्याही-भरी दावात उलट पड़ी—कादम्बिनीकी सारी स्मृति और चेतना—विश्व-ग्रन्थकी सारी लिखावट—पल-भरमें एकाकार हो गई। बेचारी विधवाको इतनी भी सुधि नहीं कि लल्लूने उसे एक बार अन्तिम समय, अपने उस मधुर स्नेहके स्वरमें 'चाची' कहकर पुकारा था या नहीं, उसे यह भी याद नहीं कि वह अपनी इस अनन्त और अज्ञात मरण-यात्राकी लम्बी गैलके लिए अपनी चिरपरिचित पृथ्वीसे उस अन्तिम स्नेहके तोशे—'चाची'—को लाई है या नहीं।

पहले तो यही जान पड़ा कि यमपुरी शायद ऐसी ही सुनसान और चिर-अन्धकारमय होती होगी। वहाँ कुछ भी देखनेको नहीं, सुननेको नहीं, काम नहीं, काज नहीं, सिर्फ हमेशा इसी तरह उठकर जागकर बैठे रहना पड़ेगा।

उसके बाद, जब खुले हुए दरवाज़ेसे सहसा एक ठंडी बरसाती हवाका झोंका आया और मेढ़कोंकी टर्र-टर्र कानोंमें पड़ी, तब एक ही क्षणमें उसके मनमें अपने स्वल्प जीवनकी बचपनसे लेकर आज तककी सम्पूर्ण वर्षाओंकी स्मृति जाग उठी, और पृथ्वीके निकट-संस्पर्शका उसे अनुभव हुआ। एक बार बिजली चमक उठी,—सामने तालाब, बरगदका पेड़, दूर तक मैदान और पेड़-ही-पेड़

क्षण-भरके लिये नज़र आये। याद उठ आई, कभी-कभी पुण्य-तिथिके दिन इस तालाबके किनारे आकर उसने स्नान किया है; और भी स्मरण हो आया, उस समय इसी मसानमें मुरदा देखकर मृत्यु उसे कैसी भयानक जान पड़ती थी।

पहले तो मनमें आई, 'घर लौट चलूँ'। फिर सोचने लगी—'मैं ज़िन्दा नहीं हूं, घरमें घुसने क्यों देंगे? वहां जानेसे उनका अमंगल होगा। जीव-राज्यसे मैं तो निर्वासित हो चुकी हूं—मैं तो अब अपनी प्रेतात्मा हूं!'

अगर ऐसा न होता, तो वह इस अँधेरी आधी रातमें शारदाशंकरके सुरक्षित अन्तःपुरसे इस दुर्गम श्मशानमें आई कैसे? अब भी अगर उसकी अन्त्येष्टिक्रिया समाप्त नहीं हुई है, तो दाग देनेवाले आदमी कहां गये? शारदाशंकरके प्रकाशमय मकानमें उसे अपनी मृत्युकी अन्तिम घड़ियोंका स्मरण हो आया, उसके बाद ही गांवसे बहुत दूर इस सुनसान अन्धकारमय श्मशानमें अपनेको अकेली देखकर उसने समझ लिया कि 'मैं इस पृथ्वीके मनुष्य-समाजमें अब कोई भी नहीं हूं—मैं बहुत ही भीषण हूं,—अकल्याणकारिणी हूं; मैं हूं अपनी प्रेतात्मा!'

मनमें इस बातका उदय होते ही उसे मालूम हुआ कि उसके चारों तरफ़से विश्व-नियमके सारे बन्धन मानो टूटकर गिर पड़े। मानो उसमें अद्भुत शक्ति है, असीम स्वाधीनता है,—जहां चाहे, जा सकती है; जो चाहे, कर सकती है। इस अभूतपूर्व नवीन भावोंके आविर्भावसे वह उन्मत्तकी तरह हो गई और सहसा आंधीकी तरह

घरसे बाहर निकलकर अन्धकारपूर्ण श्मशानके ऊपरसे सनाती हुई चली गई,—मनमें लज्जा-भय-चिन्ताका लेशमात्र भी न रहा।

चलते-चलते पैर थक गये, देहमें थकावट आने लगी। मैदानपर मैदान पार करती गई, पर उनका छोर न आया,—बीच-बीचमें धानके खेत थे,—कहीं-कहीं घुटनोंतक पानी जमा हुआ था। जब पौ फटी, कुछ-कुछ सवेरेका उजेला दिखाई दिया, तब पास ही गांवकी बस्तीके पेड़ोंमेंसे दो-एक चिड़ियोंकी चुहचुहाहट सुन पड़ी।

तब उसे एक तरहका डर-सा मालूम होने लगा। पृथ्वीके साथ, जीवित मनुष्योंके साथ अब उसका कैसा नया सम्बन्ध हो गया है, उसे इसकी जरा भी खबर नहीं। जब तक वह मैदानमें थी, श्मशानमें थी, सावनकी रातके अन्धकारमें थी, तब तक मानो वह निर्भय थी, मानो अपने राज्यमें थी। दिनके उजेलेमें आदमियोंकी बस्ती उसे बहुत ही डरावनी जगह मालूम होने लगी। आदमी भूतसे डरता है, और भूत भी आदमीसे डरता है; मृत्यु-नदीके दोनों किनारोंपर दोनोंका निवास है।

तीसरा परिच्छेद

कादम्बिनीके कपड़े कीचसे सन रहे थे, अद्भुत वेश था, रात-भर जागनेसे वह पागल-सी हो रही थी। चेहरा उसका ऐसा हो रहा था कि आदमी उसे देखकर डर सकते थे और लड़के तो शायद दूर भागकर उसे ढेले मारते। सौभाग्यवश एक राह चलते भले-आदमीने उसे सबसे पहले इस दशामें देखा।

उसने पास आकर पूछा—"बेटी! तुम किसी भले घरकी कुल-वधू जान पड़ती हो, तुम इस दशामें अकेली कहाँ जा रही हो?"

कादम्बिनीने पहले तो कुछ उत्तर न दिया, यों ही उसके मुँहकी तरफ़ ताकती रही। एकाएक उसे कुछ सूझ न पड़ा। वह संसारमें मौजूद है, किसी भले घरकी कुलवधू-सी जान पड़ती है, राह चलता पथिक उससे कुछ पूछ रहा है, ये सब बातें उसे अनहोनी-सी जान पड़ने लगीं।

पथिकने उससे फिर पूछा—"चलो, बेटी, मैं तुम्हें घर पहुंचा दूँ, तुम्हारा घर कहाँ है, मुझे बताओ।"

कादम्बिनी सोचने लगी—ससुराल लौटना तो अब फ़िजूल है, वहाँ स्थान कहाँ? और मायकेमें है ही कौन? तब उसे अपनी बचपनकी सहेलीकी याद आई।

सहेली योगमायाके साथ यद्यपि लड़कपनसे ही बिछोह हो गया था, फिर भी बीच-बीचमें उससे चिट्ठी-पत्री चलती रहती थी। कभी-कभी बड़े ज़ोरोंसे प्यारकी लड़ाई चलती—कादम्बिनी दिखाना चाहती कि उसका प्रेम प्रबल है, वह बहुत चाहती है, और योगमाया जताना चाहती कि जितना वह चाहती है, उतना सखीकी तरफ़से प्रेम नहीं मिलता। दोनोंको ही इस बातका दावा रहता था कि किसी मौक़ेपर एक बार दोनोंका मिलन हो जाय, तो कोई भी किसीको पलक-भरके लिए आँख-ओझल न होने दे।

कादम्बिनीने उस भले-आदमीसे कहा—"निशिन्दापुरमें श्रीपति बाबूके घर जाऊँगी।"

वह पथिक कलकत्ते जा रहा था ; निशिन्दापुर यद्यपि पास न था, फिर भी उसके रास्तेमें ही पड़ता था। उसने स्वयं इन्तज़ाम करके कादम्बिनीको श्रीपति बाबूके घर पहुंचा दिया।

दोनों सखियोंमें मिलाप हुआ। पहले पहचाननेमें कुछ देर लगी, फिर बादमें बचपनका सादृश्य दोनोंकी आँखोंमें क्रमशः परिस्फुटित हो उठा।

योगमायाने कहा—"आज मेरे बड़े भाग्य हैं! सचमुच तुम्हारे दर्शन पानेकी मुझे कोई आशा ही नहीं थी। पर बहन, तुम आई किस तरह ? ससुरालवालोंने तुम्हें यहाँ आने कैसे दिया !"

कादम्बिनी चुप रही ; अन्तमें बोली—"बहन ससुरालकी बात मुझसे न पूछो ! मुझे दासीकी तरह अपने यहाँ एक कोनेमें रहने दो, मैं तुम्हारा सब काम कर दिया करूँगी।"

योगमायाने कहा—"बहन, तुम कैसी बातें कर रही हो ! दासीकी तरह क्यों रहोगी ? तुम तो मेरी सहेली हो, तुम मेरी…"—इत्यादि।

इतनेमें श्रीपति चले आये। कादम्बिनी कुछ देर तो उनके मुँहकी ओर देखती रही, फिर धीरे-धीरे कमरेसे बाहर निकल आई; न घूँघट खींचा, न किसी तरहका संकोच या सलज्ज भाव ही दिखलाया।

कहीं उसकी सहेलीके विरुद्ध श्रीपति कुछ ख़याल न कर बैठें, इस ख़यालसे योगमायाने बड़ी फुर्तीके साथ पतिको तरह-तरहसे समझाना शुरू किया। परन्तु इतना कम समझाना पड़ा और श्रीपतिने इतनी जल्दी योगमायाकी सब बातें मान लीं कि योगमाया अपने मनमें विशेष सन्तुष्ट न हुई।

कादम्बिनी सहेलीके घर आई तो सही, पर सहेलीसे ज़्यादा हिल-मिल न सकी—बीचमें मृत्युका व्यवधान था। अपने सम्बन्धमें सर्वदा एक तरहका सन्देह और सजग-भाव बना रहे तो दूसरोंसे हिलना-मिलना कठिन हो जाता है। कादम्बिनी योगमायाके मुँहकी ओर देखती और न जाने क्या सोचती रहती है,—उसे मालूम होता कि मानो वह अपने पति और घर-गिरस्तीके साथ बहुत दूर किसी और ही संसारमें है। पृथ्वीके लोग मानो स्नेह-ममता और कर्तव्योंसे घिरे हुए हैं, और वह मानो शून्य छाया है! मानो उसकी सखी अस्तित्वके देशमें है और वह अनन्तके बीचमें।

योगमायाका जी भी न जाने कैसा हो गया, वह कुछ भी न समझ सकी। स्त्रियोंको रहस्य नहीं सुहाता,—कारण अनिश्चितको लेकर कविता की जा सकती है, वीरता दिखाई जा सकती है, पाण्डित्य प्रकट किया जा सकता है, किन्तु घर-गिरस्ती नहीं की जा सकती। इसीलिए स्त्रियाँ जिसे समझ नहीं पातीं, उसके अस्तित्वको नष्ट करके या तो उसके साथ किसी तरहका सम्बन्ध ही नहीं रखतीं, या फिर उसे अपने हाथसे नया रूप देकर अपने काम आने-लायक़ चीज़ बना लेती हैं,—और यदि दोनोंमेंसे एक भी बात न हो सकी, तो फिर उसपर खूब खीझती रहती हैं।

कादम्बिनी ज्यों-ज्यों पहेलीकी तरह दुर्बोध होने लगी, त्यों-त्यों योगमाया मन-ही-मन उससे खीझने लगी; सोचती, यह कौनसी बला आ पड़ी सिरपर?

एक और आफ़त है। कादम्बिनी स्वयं अपनेसे डरती है!

क्या करे, अपने पाससे आप वह किसी तरह भाग नहीं सकती। जो भूतसे डरते हैं, उन्हें अपने पीछे डर जान पड़ता है,—जहां दृष्टि नहीं पहुंचती, वहीं डर है। परन्तु, कादम्बिनीको अपनेमें ही सबसे ज़्यादा डर है—बाहर नहीं।

इसीलिए किसी-किसी दिन दोपहरको वह सूनी कोठरीमें एकाएक चिल्ला उठती है,—और सन्ध्याके बाद दीपकके उजेलेमें अपनी परछाईं देखकर उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

उसकी यह हालत देखकर घर-भरके लोगोंके मनमें एक तरहका भय उत्पन्न हो गया। नौकर-नौकरानी और योगमाया तकको जहां-तहां जब-तब भूत दिखलाई देने लगे।

एक दिन ऐसा हुआ कि कादम्बिनी आधी रातको अपनी कोठरी में से निकलकर रोती हुई एकदम योगमायाके कमरेके दरवाज़ेके पास आ खड़ी हुई, और बोली—"जीजी, जीजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे अकेली मत छोड़ा करो।"

योगमाया जैसे डरी, वैसे गुस्सा भी उसे खूब आया। मनमें आई कि उसी घड़ी उसे निकाल बाहर करे; परन्तु श्रीपतिको दया आ गई, उसने बड़ी मुश्किलसे उसे शान्त करके बगलकी कोठरीमें उसके रहनेका प्रबन्ध कर दिया।

दूसरे दिन श्रीपति बे-वक़्त अन्तःपुरमें तलब किये गये। योगमायाने उन्हें एकाएक डांटना शुरू कर दिया—"क्यों जी, तुम कैसे आदमी हो! एक औरत अपनी ससुराल छोड़कर महीने भरसे तुम्हारे घरपर रह रही है, जानेका नाम तक नहीं लेती, और

तुम्हारे मुँहसे 'उँःह' तक नहीं निकलती, यह बात क्या है? तुम्हारे मनमें क्या है, ज़रा बताओ तो सही। तुम मरदोंकी क़ौम ही ऐसी है।"

वास्तवमें साधारण स्त्री-जातिपर पुरुषोंका एक प्रकारका बिना विचारका पक्षपात होता है, और उसके लिये स्त्रियाँ ही उन्हें अधिक अपराधी साबित करती हैं। असहाय—किन्तु सुन्दरी—कादम्बिनी पर श्रीपतिकी करुणा उचित मात्रासे कुछ ज़्यादा थी, इस बातके विरुद्ध वे योगमायाकी देह छूकर क़सम खानेको तैयार रहते, लेकिन फिर भी उनके आचरणोंसे योगमायाकी धारणा ही पुष्ट होती थी।

वे मनमें समझते थे कि सुसरालवाले अवश्य ही इस पुत्र-हीन विधवाके साथ निर्दय व्यवहार करते होंगे, इसीसे बहुत जी ऊब जानेके कारण उसने हमारे घरमें आकर आश्रय लिया है। जब कि इसके मा-बाप कोई नहीं हैं, तो मैं इसे कैसे निकाल दूँ! यही समझकर अब तक उन्होंने कादम्बिनीके विषयमें कुछ जाँच-पड़ताल नहीं की थी, और कादम्बिनीसे भी ऐसी बातें पूछकर उसका जी दुखाना उचित नहीं समझा था।

तब उनकी स्त्रीने उनकी निश्चेष्ट कर्तव्य-बुद्धिपर अनेक प्रकारसे आघात पहुँचाना शुरू किया। इस बातको वे अच्छी तरह समझ गये कि कम-से-कम अपने घरमें शान्ति बनाये रखनेके लिये कादम्बिनीकी सुसरालमें खबर पहुँचाना ज़रूरी है। अन्तमें निश्चय किया कि एकाएक चिट्ठी पहुँचनेसे उसका असर शायद अच्छा न भी हो, इसलिये बेहतर है कि खुद ही रानीहाट जाकर मामलेको समझ आवें।

श्रीपति तो चले गये रानीहाट, इधर योगमायाने आकर कादम्बिनीसे कहा—"बहन, अब यहां तुम्हारा रहना अच्छा नहीं मालूम देता ! लोग क्या कहेंगे !"

कादम्बिनीने गम्भीर दृष्टिसे योगमायाके मुँहकी ओर देखते हुए कहा—"लोगोंके साथ मेरा सम्बन्ध ही क्या है ?"

उत्तर सुनकर योगमाया दंग रह गई। कुछ गुस्सेमें आकर कहा—"तुम्हारा न सही, मेरा तो है ! हम पराये घरकी बहू-बेटीको कैसे और क्या कहकर अपने यहां रोक रक्खें ?"

कादम्बिनीने कहा—"मेरी सुसराल कहां है ?"

योगमायाने अपने मनमें कहा—"मर जा !—कलमुँही कहती क्या है ?"

कादम्बिनीने धीरे-धीरे कहा—"मैं क्या तुम लोगोंकी कोई हूँ ? मैं क्या इस दुनियांकी हूँ ? तुम लोग हँसते हो, रोते हो, प्यार करते हो, सब कोई अपने-अपनेके साथ आनन्दसे रहते हो, मैं तो सिर्फ देखती भर हूँ ! तुम लोग आदमी हो, और मैं हूँ छाया ! समझमें नहीं आता, भगवानने मुझे तुम लोगोंकी गिरस्तीके बीचमें क्यों डाल रखा है ! तुम लोग भी डरते हो, कहीं तुम्हारे हँसी-खेलमें मैं अमंगल न ला दूँ,—मैं भी समझ नहीं पाती कि तुम लोगोंसे मेरा क्या सम्बन्ध है। पर भगवान ही ने जब हम लोगोंके लिये कोई अलहदा जगह मुक़र्रर नहीं की है, तो क्या किया जाय ? इसीसे बन्धन टूट जानेपर भी तुम्हीं लोगोंके आस-पास घूम फिर रही हूँ।"

ये बातें उसने योगमायाके मुँहकी तरफ़ देखते हुए इस ढंगसे

कहीं कि योगमाया न-जाने क्याका क्या समझ गई, किन्तु असल बात उसकी समझमें न आई, और न वह कुछ उत्तर ही दे सकी। दूसरी बार वह कुछ पूछ भी न सकी। बहुत ही भारग्रस्त गम्भीर होकर वहांसे चली गई।

चौथा परिच्छेद

रातके क़रीब दस बजे होंगे, तब श्रीपति रानीहाटसे लौटे। खूब मूसलधार वर्षा हो रही थी। लगातार उसके झरझर शब्दसे मालूम होता था कि न आज वर्षा ख़त्म होगी, न रात।

योगमायाने पूछा—"क्या हुआ?"

श्रीपतिने कहा—"बहुतसी बातें हैं, पीछे बताऊँगा।" कहते हुए उन्होंने कपड़े उतारे, भोजन किया, फिर तमाकू पीकर सोने चले गये। बड़े चिन्तित थे।

योगमाया बहुत देरसे अपने कुतूहलको दबाये बैठी थी, पलंगपर पहुंचते ही पूछने लगी—"हाँ, बताओ अब, क्या हुआ?"

श्रीपतिने कहा—"ज़रूर तुमने भूल की है।"

सुनते ही योगमायाको ज़रा गुस्सा-सा आ गया। भूल तो स्त्रियोंसे कभी हो ही नहीं सकती, और अगर हो भी जाय, तो किसी बुद्धिमान पुरुषको उसका उल्लेख नहीं करना चाहिये, उसे अपने ऊपर ले लेना ही ठीक है। योगमायाने कुछ गर्म होकर कहा—"कैसे, ज़रा मैं भी तो सुनूँ!"

श्रीपतिने कहा—"जिस स्त्रीको तुमने अपने यहां स्थान दिया है, वह तुम्हारी कादम्बिनी नहीं है !"

ऐसी बात सुनकर सहज ही क्रोध आ सकता है,—और खासकर अपने पतिके मुँहसे सुननेपर तो कहना ही क्या। योगमायाने कहा—"अपनी सहेलीको मैं नहीं पहचानती, तुम्हारे पहचनवानेपर पहचानूँगी, क्यों ?—इनका बात कहनेका ढंग तो देखो !—"

श्रीपतिने समझाया, यहां बात कहनेके ढंगपर कोई तर्क नहीं हो रहा, प्रमाण देखना चाहिये। योगमायाकी सहेली जो कादम्बिनी थी, वह तो मर चुकी, इसमें रत्ती-भर भी सन्देह नहीं।

योगमायाने कहा—"ज़रा इनकी बातें तो सुनो ! ज़रूर तुम कुछ न-कुछ ग़लती कर आये हो। न-जाने कहांके मारे कहां पहुँचे होगे, क्या सुनते क्या सुना होगा, कुछ ठीक थोड़ा ही है। तुम्हें ख़ुद जानेको किसने कहा था, एक चिट्ठी डालकर पूछ लेते तो सब मामला ही साफ़ हो जाता।"

अपनी कार्य-कुशलतापर स्त्रीका विश्वास न जमते देख श्रीपति बड़े दुःखित हुए, और विस्तृत रूपसे तमाम प्रमाणोंका प्रयोग करने लगे,—लेकिन कुछ नतीजा न निकला। दोनों ओरसे 'हाँ, ना' करते-करते रातके बारह बज गये।

यद्यपि कादम्बिनीको इसी घड़ी घरसे निकाल बाहर करनेमें पति-पत्नीमें कोई मतभेद न था,—कारण, श्रीपति समझते थे कि उनके अतिथिने छद्म-परिचय देकर उनकी स्त्रीको धोखा दिया है और योग-मायाका विश्वास था कि वह कुलमें दाग़ लगाकर निकल आई है,—

फिर भी वर्तमान तर्कमें दोनोंमेंसे कोई भी हार माननेको तैयार नहीं।

दोनोंका कंठस्वर धीरे-धीरे ऊँचा हो चला, दोनों ही इस बातको भूल गये कि बगलकी कोठरीमें कादम्बिनी सो रही है।

एक कहता—"अच्छी आफतमें जान फँसी! अपने कानोंसे सुन आया हूं!"

दूसरा दृढ़ताके साथ कहता—"मान कैसे लूं, मैं अपनी आँखोंसे देख रही हूं!"

अन्तमें योगमायाने पूछा—"अच्छा, कादम्बिनी कब मरी बताओ?"

उसने मनमें सोचा कि कादम्बिनीकी किसी एक चिट्ठीकी तारीखके साथ उसके मरनेकी तारीखमें फ़र्क दिखाकर पतिकी ग़लती साबित कर दूँगी।

श्रीपतिने जो तारीख बताई, उससे दोनोंने हिसाब लगाकर देखा कि जिस दिन शामको कादम्बिनी उनके घर आई थी, उस दिनकी तारीख ठीक उससे एक दिन पहलेकी पड़ती है! सुनते ही योगमायाकी छाती एकाएक कांप उठी, श्रीपतिको भी दहदका-सा बैठ गया।

इतनेमें कमरेका दरवाज़ा खुल गया, बरसाती हवाके एक झोंकेसे भीतरका चिराग़ चटसे बुझ गया। बाहरके अन्धकारने घरमें घुसकर कमरे-भरमें अंधेरा कर दिया। कादम्बिनी एकदम घरके भीतर आकर खड़ी हो गई। उस समय क़रीब ढाई पहर रात बीत चुकी थी, बाहर ज़ोरोंसे पानी पड़ रहा था।

कादम्बिनीने कहा—"सखी, मैं तुम्हारी वही कादम्बिनी हूं, पर अब मैं ज़िन्दा नहीं! मैं मरी हुई हूं।"

योगमाया मारे डरके चिल्ला उठी,—श्रीपतिके मुँहसे कोई शब्द न निकला।

"परन्तु मरनेके सिवा मैंने तुम लोगोंका और क्या बिगाड़ा है! मेरे लिए अगर, इस लोकमें और परलोकमें, कहीं भी स्थान नहीं है, तो—क्यों जी, मैं अब कहां जाऊँ?" तीव्र स्वरसे चीत्कार करके मानो उसने इस गम्भीर वर्षा-निशीथमें सोते हुए विधाताको जगाकर पूछा—"क्यों जी, मैं अब कहाँ जाऊँ?"

इतना कहकर, मूर्छित दम्पतीको अँधेरे घरमें छोड़कर, कादम्बिनी विश्व-संसारमें अपने लिए स्थान ढूँढ़ने चल दी।

पाँचवाँ परिच्छेद

कादम्बिनी किस तरह रानीहाट पहुंच गई, यह बतलाना कठिन है। परन्तु पहले-पहल उसने अपनेको किसीकी दृष्टिमें नहीं पड़ने दिया। तमाम दिन भूखी-प्यासी एक टूटे-फूटे पुराने खंडहर मन्दिरमें पड़ी रही।

वर्षाकी अकाल-सन्ध्या जब अत्यन्त घनी हो आई और शीघ्र ही भारी आँधी-मेह आनेकी आशंकासे जब गांवके लोग जल्दी-जल्दी अपने-अपने घर पहुंचकर निश्चिन्त होने लगे, तब कादम्बिनी सड़कपर निकली। ससुरालके द्वारपर पहुंचते ही एकबार उसका हृदय कांप उठा

था, परन्तु लम्बा घूंघट खींचकर जब भीतर घुसी, तो दासी समझकर दरवानोंने उसे रोका नहीं ; इतनेमें पानी भी खूब ज़ोरोंसे पड़ने लगा, हवा भी खूब तेज़ चलने लगी।

उस समय घरकी मालिकिन शारदाशंकरकी स्त्री अपनी विधवा ननदके साथ ताश खेल रही थीं। महरी थी रसोईघरमें, और बीमार बच्चा ज़रा-कुछ बुखार ढीला पड़ जानेसे सोनेके कमरेमें बिछौनेपर सो रहा था। कादम्बिनी सबकी आँख बचाकर उसी कमरेमें पहुंची। मालूम नहीं, वह क्या सोचकर सुसराल आई थी ; वह खुद भी शायद नहीं जानती। वह तो सिर्फ इतना ही जानती है कि एक बार अपने प्यारे बच्चेको आँखोंसे देख आवे। उसके बाद, कहां जायगी, क्या करेगी, क्या होगा, ये बातें उसने सोची तक न थीं।

दीपकके उजेलेमें देखा कि रोगसे पीड़ित मुरझाया हुआ कमज़ोर बालक हाथोंकी मुट्ठी बांधे पड़ा सो रहा है। देखते ही विधवाका उत्तप्त हृदय मानो प्याससे व्याकुल हो उठा, उसकी सारी बलाओंको टालकर उसे एक बार उठाकर छातीसे बिना लगाये वह कैसे जी सकती है! और, उसके बाद, फिर सोचने लगी,—मैं नहीं हूं, इसको देखनेवाला कौन है। इसकी माको तो सोहबत अच्छी लगती है, दिन-भर गप्पें करा लो, ताश खिला लो, इतने दिन मेरे हाथ सौंपकर वह निश्चिन्त थी, कभी उसे लड़के पालनेकी दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। अब इसकी उतनी देखभाल कौन करता होगा?

इसी समय लल्लूने सहसा करवट बदली, और उसी तरह अर्ध-निद्रित अवस्थामें बोल उठा—"चाची, पानी!" 'हाय भगवान्!

सोनेका सूआ मेरा, तू अपनी चाचीको अभी तक नहीं भूला !' कादम्बिनीने जल्दीसे सुराहीमें से पानी लेकर, लल्लूको छातीसे लगाकर पानी पिलाया।

जब तक नींदकी खुमारी थी, हमेशाके अभ्यासके अनुसार चाचीके हाथसे पानी पीनेमें लल्लूको कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। अन्तमें कादम्बिनीने जब बहुत दिनोंकी अकांक्षा मिटाकर उसका मुँह चूमकर उसे फिरसे सुलाना चाहा, तो उसकी नींद उछट गई, चाचीसे लिपटकर उसने पूछा—"चाची, तू मल गई थी?"

चाचीने कहा—"हाँ, बेटा !"

"फिल तू लल्लूके पास आई है? अब तू मलेगी तो नइं?"

इसका उत्तर दे भी न पाई कि एक घटना और हो गई; महरी एक कटोरेमें साबूदाना लिये घरमें घुस रही थी, एकाएक कटोरा पटककर—'अम्मा री'—चिल्लाती हुई वह ज़मीनपर पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

चिल्लाहट सुनते ही ताश फेंककर मालिकिन दौड़ी आईं, कमरेमें पैर रखते ही वे काठके ठूँठकी तरह खड़ी रह गईं, न भाग ही सकीं, न मुँहसे कुछ कह सकीं।

यह सब देखकर लड़केके मनमें भी डर-सा बैठ गया—वह रोने लगा, बोला—"चाची, तू जा !"

कादम्बिनीको बहुत दिन बाद आज अनुभव हुआ कि वह मरी नहीं है,—वही पुराना घर-द्वार, वही सब कुछ, वही लल्लू, वही स्नेह उसके लिये समान जीवित दशामें ही है, बीचमें कोई विच्छेद, कोई

व्यवधान नहीं हुआ। सहेलीके घर जाकर उसने अनुभव किया था, उसकी बाल्यकालकी वह सहेली मर गई है,—लल्लूके घर आकर उसको मालूम हुआ, लल्लूकी चाची तो रत्ती-भर भी नहीं मरी।

व्याकुल होकर बोली—"जीजी, तुम लोग मुझे देखकर डर क्यों रही हो! यह देखो, मैं तुम्हारी वही—वैसो ही तो हूं।

मालकिनसे खड़ा न रहा गया, मूर्छित होकर गिर पड़ीं।

बहनके ज़रिये ख़बर पाकर शारदाशंकर बाबू स्वयं अन्तःपुरमें आ पहुंचे। उन्होंने हाथ जोड़कर कादम्बिनीसे कहा—"छोटी बहू, क्या तुम्हें यही चाहिये था? बस, सतीश ही हमारे वंशका एक लड़का है, उसपर तुम क्यों दृष्टि डाल रही हो? हम लोग क्या तुम्हारे ग़ैर हैं? तुम्हारे मरनेके बादसे वह दिन-पर-दिन सूखा जा रहा है, उसकी बीमारी उसे छोड़ती ही नहीं। दिन-रात वह 'चाची, चाची' किया करता है। जब तुम संसारसे विदा ही ले चुकी हो, तो फिर यह व्यर्थकी माया-ममता क्यों? इसे भी छोड़ दो,—हम लोग तुम्हारा यथोचित सत्कार करेंगे!"

कादम्बिनीसे अब सहा न गया, वह तीव्र स्वरसे बोल उठी—"हाय हाय, मैं मरी नहीं हूं! हाय, मैं तुम लोगोंको कैसे समझाऊँ कि मैं मरी नहीं हूं। यह देखो, मैं ज़िन्दा हूं!"—

कहती हुई वह ज़मीनसे फूलका कटोरा उठाकर माथेसे मारने लगी,—भेजा फटकर ख़ून बहने लगा।

तब बोली—"यह देखो, मैं जीती हूं!"

शारदाशंकर कठपुतलीकी तरह खड़े रहे—लल्लू डरके मारे

'बाबू, बाबू' पुकारने लगा, दोनों मूर्च्छित स्त्रियां ज़मीनपर पड़ी रहीं।

तब कादम्बिनी—"हाय, मैं मरी नहीं हूं, मरी नहीं हूं, मरी नहीं हूं"—चिल्लाती हुई घरसे बाहर निकली और सीढ़ियोंसे उतरकर अन्तःपुरके तालाबमें कूद पड़ी। शारदाशंकरको ऊपरके कमरेमें ही किसीके पानीमें गिरनेका धमाका सुनाई दिया।

सारी रात पानी बरसता रहा, उसके दूसरे दिन सवेरे भी वर्षा बन्द नहीं हुई—दोपहरको भी पानी बरसता रहा।

कादम्बिनीने मरकर साबित किया कि वह मरी नहीं थी।

[भाद्र, १९४९]

ख़ासा नावेल

पहला परिच्छेद

"अल्ला-हो-अकबर" की ध्वनिसे रणभूमि प्रतिध्वनित हो उठी है। एक ओर तीन लाख यवन-सेना है, दूसरी ओर तीन हज़ार आर्य-सेना। बाढ़के बीचमें अकेले पीपलके पेड़के समान हिन्दू वीरगण सारी रात और तमाम दिन युद्ध करते हुए अटल खड़े थे, परन्तु अब हार जानेके लक्षण दिखाई दे रहे हैं। और उसके साथ ही भारतकी जयपताका ज़मीनपर गिर पड़ेगी,—आजकी इस अस्ताचलवर्ती सहस्र-रश्मिके साथ हिन्दुस्तानका गौरव-सूर्य हमेशाके लिए अस्त हो जायगा।

"हर हर, बोम् बोम्!" पाठक, बता सकते हो, कौन वह गर्वित युवक सिर्फ पैंतीस अनुचरोंको लेकर नंगी तलवार हाथमें लिये घोड़ेपर सवार भारतकी अधिष्ठात्री देवीके हाथसे छोड़े गये दीप्त वज्रकी तरह शत्रु-सेनापर आ गिरा है? बता सकते हो, किसके प्रतापसे यह अगणित

यवन सेना, प्रचंड तूफानसे घायल जंगली पेड़ोंकी तरह घबरा उठी है ? किसके वज्र-मन्द्रित "हर हर, बोम् बोम्" शब्दसे तीन लाख म्लेच्छ-कण्ठकी "अल्ला-हो-अकबर" ध्वनि आकाशमें विलीन हो गई, किसकी चमचमाती तलवारके सामने व्याघ्रसे आक्रान्त मेड़के बच्चेकी तरह शत्रु-सेना क्षण-भरमें दुम दबाकर भागने लगी ? बता सकते हो, उस दिनके आर्य-स्थानके सूर्यदेव सहस्र रक्तकर-स्पर्शसे किसकी रक्ताक्त तलवारको आशीर्वाद देकर अस्ताचलपर विश्राम करने गये थे ? बता सकते हो पाठक ?

ये ही वे ललितसिंह हैं,—कांचीके सेनापति। भारत-इतिहासके ध्रुव-नक्षत्र।

दूसरा परिच्छेद

आज कांची नगरमें क्यों इतना उत्सव है ? पाठक, जानते हो ? हर्म्य-शिखरपर जय-पताका क्यों इतनी चंचल हो उठी है ? केवल हवाके ज़ोरसे या आनन्दकी उमंगसे ? द्वार-द्वारपर कदली-वृक्ष और मंगल-घट रखे हुए हैं। घर-घरमें जयध्वनि हो रही है। मार्ग-मार्गपर दीपमालाएँ शोभित हैं। नगरीकी प्राचीरपर लोगोंकी बड़ी भीड़ लगी है। नगरके लोग किसके लिए इतने उत्सुक होकर प्रतीक्षा कर रहे हैं! सहसा पुरुष-कण्ठकी जयध्वनि और कामिनी-कण्ठकी हुलुध्वनि दोनों एक साथ मिलकर आकाश भेदती हुई नक्षत्र-लोककी ओर उदित हुई। नक्षत्र-पंक्ति पवनसे हिलती हुई दीपमालाकी तरह काँपने लगी।

वह जो प्रमत्त तुरंगमपर सवार वीरवर पुर-द्वारसे प्रवेश कर रहा है, उसे पहचाना ? हाँ, ये ही हैं हमारे पूर्वपरिचित ललितसिंह,—कांचीके सेनापति। शत्रुओंका नाश करके अपने प्रभु कांची-राजके चरणोंमें शत्रु-रक्तसे रंगा हुआ खड्ग भेंट करने आये हैं, इसीलिए इतना उत्सव है।

किन्तु इतनी जो जयध्वनि हो रही है, उस ओर सेनापतिका ज़रा भी ध्यान नहीं; झरोखोंसे पुर-ललनायें इतनी जो पुष्पवृष्टि कर रही हैं, उधर उनकी दृष्टि तक नहीं जाती। वनके मार्गसे जब तृष्णातुर पथिक सरोवरकी ओर दौड़ता है, तब यदि उसके सिरपर सूखे पत्ते झर-झरकर गिरते हों, तो क्या वह उस तरफ ध्यान देता है! अधीर-चित्त ललितसिंहको यह विपुल सम्मान उसी सूखे पत्तेकी भाँति नीरस, हलका और अत्यन्त साधारण-सा मालूम हुआ।

अन्तमें घोड़ा जब अन्तःपुरके प्रासादके सामने जा पहुंचा, तब क्षण-भरके लिए सेनापतिने हाथकी लगाम खींची, घोड़ा क्षण-भरके लिए ठिठक गया, ललितसिंहने एक बार प्रासादके झरोखेकी ओर तृषित नेत्रोंसे देखा, क्षण-भरके लिए क्या देखते हैं कि दो लज्जानत नेत्र एक बार बिजलीकी तरह उनके मुँहपर पड़े, और दो अनिन्दित बाहुओंसे एक पुष्पमाला झरकर उनके सामने ज़मीनपर आ गिरी। उसी क्षण घोड़ेसे उतरकर उस मालाको किरीट-शिखापर उठा लिया, और एक बार कृतार्थ-दृष्टिसे ऊपरकी ओर देखा। तब तक झरोखेका द्वार बंद हो चुका था—दीपक बुझ चुका था।

तीसरा परिच्छेद

सहस्र शत्रुओंके सामने जो अविचलित था, दो मृग-नेत्रोंके समक्ष, वह पराजित है! सेनापति बहुत दिनोंसे, पत्थरके क़िलेकी तरह हृदयमें धैर्यकी रक्षा करते आये हैं; कल शामकी बात है, दो काली-काली आँखोंकी सलज्ज ससम्भ्रम दृष्टिने उस क़िलेकी नींवपर जाकर चोट की है, और इतने दिनोंका धैर्य क्षण-भरमें धूलमें मिल गया है; परन्तु छिः, सेनापति, इससे क्या तुम्हें सन्ध्याके अन्धकारमें चोरकी तरह राज-अन्तःपुरके उद्यानकी प्राचीर लांघनी चाहिए थी। भुवन-विजयी वीर-पुरुष तुम्हीं हो न!

परन्तु जो उपन्यास लिखता है, उसके लिए कहीं भी कोई बाधा नहीं; द्वारपाल द्वारपर नहीं रोकते, असूर्यंपश्य-रूपा रमणियां भी कुछ आपत्ति नहीं करतीं, अतएव इस सुरम्य वसन्त-सन्ध्यामें दक्षिण-वायु-वीजित राज-अन्तःपुरके निर्जन उद्यानमें एक बार प्रवेश करना चाहिए।—हे पाठिकाओ, तुम भी आओ; और पाठकगण, इच्छा हो तो तुम भी पीछे-पीछे आ सकते हो; मैं अभयदान देता हूँ।

एक बार देखो तो, बकुल-वृक्षके नीचेकी तृण-शय्यापर सन्ध्या-ताराकी प्रतिमाके समान वह रमणी कौन है? हे पाठक, हे पाठिका, तुम्हें कुछ मालूम है? ऐसा रूप कहीं देखा है? इस रूपका क्या कभी वर्णन किया जा सकता है? भाषा क्या कभी किसी मन्त्र-बलसे ऐसे जीवन, यौवन और लावण्यसे भर सकती है? हे पाठक! तुम्हारा यदि दूसरा विवाह हुआ हो, तो स्त्रीके मुँहको याद करो। हे रूपवती

पाठिका, जिस युवतीको देखकर तुमने संगिनीसे कहा है—"यह ऐसी क्या देखनेमें अच्छी है, बहन ! हाँ, कुछ सुन्दर है, इससे क्या, पर वह बात नहीं है।"—उसके मुँहकी याद करो, उस वृक्षके नीचे बैठी हुई राजकुमारीके साथ उसका कुछ-कुछ सादृश्य पाओगी। पाठक और पाठिका, अब पहचाना ? ये ही राज-कन्या विद्युन्माला हैं।

राजकुमारी गोदमें फूल रखकर सिर झुकाये माला गूँथ रही हैं। गूँथते-गूँथते एक-एक बार उँगलियाँ अपने सुकुमार कार्यमें शिथिलता कर रही हैं—किसी एक अत्यन्त दूरवर्ती चिन्ता-राज्यमें भ्रमण कर रही है। राजकुमारी क्या सोच रही हैं ?

किन्तु हे पाठक, इस प्रश्नका उत्तर मैं नहीं दूँगा। कुमारीके एकान्त हृदय-मन्दिरके भीतर आज इस निस्तब्ध सन्ध्यामें जाने किस मर्त्य-देवताकी आरती हो रही है, अपवित्र कौतूहल लेकर वहां प्रवेश नहीं कर सकता। वह देखो, एक दीर्घ-निःश्वास—पूजाकी सुगन्धि—धूपके धुएँकी तरह हवामें मिल गया, और आँसूके दो बिन्दु—दो सुकोमल कुसुम-कोरकके समान—अज्ञात देवताके चरणोंपर झर पड़े।

इतनेमें पीछेसे एक पुरुषका कण्ठ गंभीर आवेगसे कम्पित रुद्ध-स्वरसे बोल उठा—"राजकुमारी !"

राजकुमारी सहसा भयसे चीख उठीं। चारों तरफ़से सिपाही दौड़े आये और अपराधीको क़ैद कर लिया। राज-कन्याको जब होश आया, तो देखा—सेनापति क़ैद कर लिये गये हैं।

चौथा परिच्छेद

इस अपराधमें प्राणदण्डका विधान है, किन्तु पूर्व-उपकारका स्मरण कर राजाने उन्हें निर्वासित कर दिया। सेनापतिने मन-ही-मन कहा—"देवी तुम्हारे नेत्र भी जब धोखा दे सकते हैं, तो सत्य संसारमें कहीं भी नहीं है। आजसे मैं मानव-जातिका शत्रु हूँ।" एक बड़े भारी दस्यु-दलके अधिपति होकर ललितसिंह वनमें वास करने लगे।

हे पाठक, हम-तुम जैसे आदमी इस घटनापर क्या करते? अवश्य ही जहां निर्वासित होते, वहां और एक नौकरीकी तलाश करते, अथवा एक नया अखबार निकाल देते। कुछ कष्ट अवश्य होता—अन्नके अभावसे, इसमें सन्देह नहीं; परन्तु सेनापति जैसे महान् पुरुष, जो उपन्यासोंमें सुलभ और पृथ्वीपर दुर्लभ हैं, वे न तो नौकरी ही करते हैं और न अखबार ही निकालते। वे जब सुखसे रहते हैं, तब एक निःश्वासमें निखिल जगतका उपकार करते हैं, और मनोवांछाके तिलमात्र व्यर्थ होते ही आरक्त-नेत्रोंसे कहते हैं—"राक्षसी पृथ्वी, पिशाच समाज, तेरी छातीपर पैर रखकर मैं बदला लूँगा,"—कहकर उसी क्षण दस्यु-व्यवसाय शुरू कर देते हैं। ऐसा अंग्रेजी काव्योंमें पढ़नेमें आता है, और अवश्य ही यह प्रथा राजपूतोंमें प्रचलित थी।

डकैतोंके उपद्रवसे देशके लोग त्रस्त हो उठे। परन्तु ये असाधारण डकैत अनाथोंके सहायक हैं, दरिद्रोंके बन्धु हैं, कमज़ोरोंके

आश्रय हैं; सिर्फ धनी, उच्चकुलके सम्भ्रान्त व्यक्ति और राजकर्मचारियोंके लिए कालान्तक यम हैं।

गहन वन है, सूर्य अस्तप्राय है, परन्तु पेड़ोंकी छायासे अकाल-रात्रिका आविर्भाव हुआ है। तरुण युवक अपरिचित मार्गसे अकेला जा रहा है। सुकुमार शरीर परिश्रमसे थक गया है, किन्तु फिर भी अध्यवसायका अन्त नहीं। कमरसे जो तलवार लटक रही है, उसका भी भार असह्य मालूम पड़ रहा है। जंगलमें ज़रा-सा शब्द होते ही भयभीत-हृदय हरिणकी तरह चौंक उठता है, किन्तु फिर भी वह इस आसन्न-रात्रि और अज्ञात अरण्यमें दृढ़ संकल्पके साथ अग्रसर हो रहा है।

डकैतोंने आकर अपने सरदारसे कहा—"महाराज, बड़ा भारी शिकार मिला है। सिरपर मुकुट है, राजाका वेश है, कमरमें तलवार झूल रही है।"

सरदारने कहा—"तो यह शिकार मेरा है। तुम सब यहीं रहो।

पथिकने चलते-चलते एक बार सहसा :सूखे पत्तोंका खस-खस शब्द सुना। उत्कंठित : होकर चारों तरफ देखने लगा।

एकाएक छातीमें आकर तीर घुस गया, पथिक "मा" कहकर ज़मीनपर गिर पड़ा।

सरदारने पास जाकर, घुटने टेककर, झुककर घायलके मुँहकी तरफ़ देखा। ज़मीनपर पड़े हुए पथिकने डकैतका हाथ पकड़कर सिर्फ एक बार मृदुस्वरसे कहा—"ललित!"

क्षणमें डकैतके हृदयके हज़ार टुकड़े हो गये—एक हाहाकार भरा चीत्कार उठा—"राजकुमारी !"

और डकैतोंने आकर देखा, शिकार और शिकारी दोनों ही अन्तिम आलिङ्गनमें आबद्ध होकर मरे पड़े हैं।

राजकुमारीने एक दिन सन्ध्याके समय अपने अन्तःपुरके उद्यानमें अज्ञानसे ललितपर राजदण्ड छोड़ा था, ललितने और एक दिन सन्ध्याके समय अरण्यमें अज्ञानसे राजकुमारीपर तीर छोड़ा। संसारके बाहर यदि कहीं भी दोनोंका मिलन हुआ हो, तो आज दोनोंने दोनोंको शायद क्षमा कर दिया होगा।

[भाद्र, १६४६]

साधारण जनताका सचित्र मासिक पत्र

आपका साथी (Comrade)



सम्पादक—बनारसीदास चतुर्वेदी. संचालक—रामानन्द चट्टोपाध्याय.

'विशाल-भारत' आपका गुरु नहीं, उपदेशक नहीं, वह आपका साथी है। वह इस बातका दावा नहीं करता कि वह किसी भी तरहसे साधारण जनतासे ऊँचा है। देखिये, 'भारतमें अंग्रेजी राज्य'के लेखक श्रीयुत सुन्दरलालजी अपने पत्रमें क्या लिखते हैं :—

"यह बड़े दुःखकी बात है कि शिक्षित हिन्दी-भाषा-भाषियोंको या तो पत्र-पत्रिकाएँ पढ़नेकी आदत नहीं, या जो पढ़ते हैं, उनमेंसे अधिकांशकी रुचि काफ़ी गिरी हुई है। यहां तक कि दुर्भाग्यवश हिन्दीके अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ भी उसी पतित रुचिको सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न करती हैं ; और जो थोड़े-बहुत लोग अच्छा साहित्य पढ़ते भी हैं, वे अंग्रेजीमें पढ़ते हैं। 'विशाल-भारत' इस समय हिन्दीके उन इने-गिने पत्रोंमेंसे है, जो सुशिक्षितसे सुशिक्षित मनुष्यके लिए उपयोगी और जो उससे उच्च रुचि रखनेवालोंको भी रुचिकर हो सकता है। मेरी रायमें 'विशाल-भारत'की सफलता हिन्दी पढ़नेवालोंकी रुचिकी उच्चताका एक पैमाना है।"

डा० सुधीन्द्र बोस, एम०ए०, पी-एच०डी० (अमेरिका) लिखते हैं :—
"....'विशाल-भारत' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पत्र है। उसका दृष्टिकोण उदार है।... 'विशाल-भारत' अपने ढंगका एक निराला ही पत्र है। हिन्दुस्तानमें इसके कमसे कम १० लाख पाठक होने चाहिये। अमेरिकामें तो इस तरहके उच्चकोटिके पत्रको दस लाख पाठक जरूर मिल जाते।"

पता :—'विशाल-भारत', १२०।२, अपर सरकूलर रोड, कलकत्ता।